आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

विवेक-शिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी

वर्ष -२२. जनवरी - २००३ अंक : १

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)

RAMAKRISHNA MISSION SEVASHRAMA
Vijanananda Marg, Mutthiganj
Allahabad, 211003
Phone : 413369

AN APPEAL

Dear Friend,

Ramakrishna Math & Ramakrishna Mission Sevashrama at Allahabad was founded in 191 by His Holiness Srimat Swami Vijnananandaji Maharaj (1868-1938), a direct disciple of S Ramakrishna, Since then this centre has been rendering services to the people of Allahaba without distinction of caste, class and creed.

Besides cultural, religious and spiritual activities, this Sevashrama is running (1) A Publi Library with a collection of 28,500 valuable books on various subjects with its 744 members an a Reading Room which receives 14 dailies and 41 periodicals in Hindi, English and Benga languages. Daily average attendance in the Library and Reading Room is 70.

(2) A Homeopathic-cum-Allopathic Dispensary with Pathology, Physiotherapy, ECG Ultrasound and specialist consultancy services such as Eye, E.N.T., Dental, Gynecology Orthopedic, Cardiology, Pediatrics and Medicines. Daily about 300 Patients are being benefitte by this dispensary.

There is a great need for the extension of The Library for increasing the Text Book Sectio and also for providing space for the students to study. Also the lecture hall needs extension fo accommodationg more people as the present Lecture Hall hardly accommodates 150 person and is inadequate to meet our requirements for holding functions like Bhakta Sammelan an Youth Convention etc.

Similarly, agreat need is felt for an operation theatre in the Dispensary along with male an female wards and also an X-Ray plant.

ESTIMATE OF FUNDS REQUIRED FOR

1.	Extension of Library cum Lecture Hall	Rs. 18 lakhs
2.	Extension of Dispensary Building including Operation theatre,	Rs. 22 lakhs
3.	Male & Female wards and X-ray machine	

Your generous donation for this holy cause will help us to run the activites smoothly and serve the people in a better way. We shall remain obliged for your contribution towards these cause. Your contribution will be thankfully acknowledged. Donation to Ramakrishna Mission Sevashrama are exempted from income Tax under Section 80G of the Income Tax Act, 1961 Please send your Cheque/Draft etc. in favour of "Ramakrishna Mission Sevashrama" crossed and account payee.

With prayer to the Lord for your welfare.

Yours in the service of the Lord

(Swami Nikhilatmananda)

।। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।।

विवेक-शिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख
हिन्दी मासिकी

जनवरी - २००३

सम्पादक
डॉ० केदारनाथ लाभ
सहायक-सम्पादक
ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

वर्ष २२
अंक १

वार्षिक ६०/- एक प्रति ६/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क
(२० वर्षों के लिए) ७००/-
संरक्षक - योजना
न्यूनतम दान - १०००/-

:- सम्पादकीय कार्यालय :-
विवेक - शिखा
रामकृष्ण निलयम्, जय प्रकाश नगर
छपरा : ८४१ ३०१ (बिहार)
दूरभाष : (०६१५२) २२२६३६

संस्थापक प्रकाशिका
स्व० श्रीमती गंगा देवी

इस अंक में

१.	स्वामी विवेकानन्द कहते हैं	३
२.	विवेकानन्द स्तुतिः - स्वामी हर्षानन्द	४
३.	पथ हैं - विवेकानन्द - सम्पादकीय सम्बोधन	५
४.	विवेकानन्द-वन्दना - डॉ० केदारनाथ लाभ	८
५.	युवशक्ति-प्रवाह के भगीरथ - विवेकानन्द - स्वामी शशांकानन्द	६
६.	आधुनिक मानव और सेवायोग - स्वामी निखिलेश्वरानन्द	११
७.	माँ सारदा देवी की प्रासंगिकता - श्री ओम प्रकाश शर्मा	१६
८.	सन्त सिपाही थे गुरु गोविन्द सिंह - डॉ० महीप सिंह	१७
६.	मानसिक तनाव के समाधान में उच्चतर मूल्यों की भूमिका - स्वामी गोकुलानन्द	१६
१०.	मदालसा - स्वामी विवेकानन्द	२५
११.	फिर न होगा दिल का रोग	३०
१२.	समाचार एवं सूचनाएँ	३१
१३.	ईश्वरप्राप्ति के सात सहज उपाय	३२

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द - रा.कृ.मि. नरोत्तमनगर
१९५. श्री हरवंशलाल पाहड़ा - जम्मूतवी, कश्मीर
१९६. श्री योगेश कुमार जिंदल - दिल्ली
१९७. डॉ. अखिलेश्वर कुमार - कनखल
१९८. श्री अनिल कुमार पूनमचन्द जैन - नागपुर
२००. श्री डी. एन. देशमुख - चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
१९९. डॉ० शीला जैन - बीकानेर
२०१. श्री योगेश कुमार पालिया, झुनझुनू (राजस्थान)
२०२. सचिव, रामकृष्ण वि. सेवाश्रम, अम्बिकापुर (म० प्र०)
२०३. श्री ओमभक्त बुडाथोपी - डाँग, नेपाल
२०४. श्री ए.डी. भट्टाचार्य - भद्रकाली (पं.बं.)
२०५. अध्यक्ष - हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कालेज, छपरा, सारण (बिहार)
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी, काराधीक्षक गिरिडीह (विहार)
२०७. सचिव - रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर (गुजरात)
२०८. सचिव - रामकृष्ण मिशन, राँची (बिहार)
२०९. श्रीमती शुभा कामत - मुम्बई (महाराष्ट्र)
२१०. श्री पंकज कुमार, सुवंसिरी (अ० प्र०)
२११. श्री बी. एल. अग्रवाल, नगाँव (आसाम)
२१२. श्री कैलास खेतान, नगाँव (आसाम)
२१३. श्रीमती शोभा मनोत, कोलकाता
२१४. श्री संजय जिंतुरकर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
२१५. श्री कृष्ण कुमार नेवटिया, कोलकाता

विवेक शिखा के संरक्षक

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर "विवेक शिखा" के "स्थायी कोष" की योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रूपये या इससे अधिक रूपये "विवेक शिखा" के "स्थायी कोष" के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। विवेक शिखा में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे आजीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इसके संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू हैं।

व्यवस्थापक

संरक्षक सूची

१. श्रीमती कमला घोष	- इलाहाबाद	-३,०००/-
२. श्री नन्दलाल टाँटिया	- कोलकाता	-१,०००/-
३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा	- जम्मूतवी	-१,०००/-
४. श्रीमती निभा कौल	- कोलकाता	-१,०००/-
५. डॉ. सुजाता अग्रवाल	- कर्नाटक	-१,०००/-
६. श्रीमती सुभद्रा हाकसर	- कोलकाता	-५,०००/-
७. स्वामी प्रत्यगानन्द	- चेन्नई	-१,०००/-
८. श्रीमती रंजना प्रसाद	- रायपुर	-१,०००/-
९. श्री जी.पी.एस. थिमीरे	- काठमांडू	-१,०००/-
१०. डॉ. निवेदिता बक्शी	- कुर्ला पं० मु०	-१,०००/-
११. श्री उमापद चौधरी	- देवघर	-१,०००/-
१२. श्री शत्रुधन शर्मा	- फतेहबाद	-१,०००/-
१३. श्री प्रभुनाथ सिंह	- माने, बिहार	-१,०००/-
१४. श्री रामकृष्ण वर्मा	- कोटा राजस्थान	-१,०००/-
१५. श्री कीर्त्यानन्द झा	- पटना, बिहार	-१,०००/-
१६. श्री रामअवतार चौधरी	- छपरा, बिहार	-१,०००/-
१७. डॉ. निधि श्रीवास्तव	- जमशेदपुर	-१,०००/-
१८. श्री सतीश कुमार वंशल	- दिल्ली	-१,०००/-
१९. श्री उदयवीर शर्मा	- खंडवाया उ०प्र०	-१,०००/-
२०. श्री आर. बी. देशमुख	- पुणे	-१,००१/-
२१. कुमारी उषा हेगड़े	- पुणे	-१,०००/-
२२. श्री राजकेश्वर राम	- छपरा, बिहार	-१,०००/-
२३. डॉ. (श्रीमती) नीलिमा सरकार	- कोलकाता	२०००/-

उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण–विवेकानन्द–भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

वर्ष -२२. जनवरी - २००३ अंक : १

इष्टदेव का हृदय–कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा' ।।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं

(१) दुःख भोग का एकमात्र कारण है दुर्बलता। हम दुःखी हो जाते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। हम झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, हत्या करते हैं, तरह-तरह के अपराध करते हैं- क्यों? इसलिए कि हम दुर्बल हैं। हम दुःख भोगते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। हम मर जाते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। जहाँ हमें दुर्बल कर देनेवाली कोई चीज नहीं, वहाँ न मृत्यु है, न दुःख।

(२) जो शिव की सेवा करना चाहता है, उसे पहले उनकी सन्तानों की- इस संसार के सारे जीवों की सेवा करनी चाहिए। शास्त्रों में कहा है कि जो भगवान् के सेवकों की सेवा करते हैं, वे भगवान् के सबसे बड़े सेवक हैं। निःस्वार्थता ही धर्म की कसौटी है। जिसमें इस निःस्वार्थता की मात्रा अधिक है, वह अधिक आध्यात्मिकता सम्पन्न है और शिव के अधिक निकट है। और यदि कोई स्वार्थी है, तो फिर चाहे उसने सारे मन्दिरों के ही दर्शन क्यों न किये हों, सारे तीर्थों में ही क्यों न घूमा हो, परन्तु फिर भी वह शिव से बहुत दूर है।

(३) इस संसार में सदैव दाता का स्थान ग्रहण करो। सब कुछ दे डालो और बदले की कोई चाह न रखो। प्रेम दो, सहायता दो, सेवा अर्पित करो, जो कुछ थोड़ा तुमसे बन सकता है वही दो, पर 'दुकानदारी के भाव' से बचे रहो। न कोई शर्त रखो और न कोई तुम पर शर्त डालेगा, न तुम पर कोई बन्धन आएगा। जिस प्रकार भगवान् हमें स्वेच्छा से देते हैं, उसी प्रकार हम भी स्वेच्छा से दें।

(४) क्या भारत मृत्यु को प्राप्त होगा? तब तो दुनिया से सारी आध्यात्मिकता चली जाएगी; सारी नैतिक पूर्णता नष्ट हो जाएगी; धर्म के प्रति सारी मधुर सहानुभूति लुप्त हो जाएगी, आदर्श के प्रति सारा प्रेम गायब हो जाएगा; और उसके स्थान पर विलासिता और कामरूपी देवी-देवता आधिपत्य कर लेंगे, जहाँ धन पुरोहित होगा, छल-कपट, जोर-जबरदस्ती और प्रतियोगिता उसके विधि-अनुष्ठान होंगे और मानवात्मा उसकी बलि होगी। पर ऐसा कभी नहीं हो सकता। कष्ट सहने की शक्ति, कार्य करने की शक्ति की अपेक्षा अनन्तगुनी श्रेष्ठ है। प्रेम की शक्ति, घृणा की शक्ति की अपेक्षा अनन्तगुनी अधिक प्रभावशाली है।

(५) महान् कार्य महान् त्याग से ही सम्पन्न हो सकते हैं।

✦✦✦✦✦

विवेकानन्द स्तुतिः

- स्वामी हर्षानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, बंगलोर

रामकृष्णस्य वाग्धारा दिव्यं च कर्मसङ्कुलम्।
यस्मिन प्रकाशिते तं वै विवेकानन्दमाश्रये।।

तेजो यस्य यतेर्विलोक्य तरणिर्लज्जायुतो जायते,
रूपं यस्य मुखस्य चारु मदनो दृष्ट्वा शरीरं जहौ।
वाणी यस्य गुरोर्निशम्य मधुरां वीणा विमोहं गता,
पादे तस्य नतिर्विवेकसुखिनः सा नः सदा रक्षतु।।

भावार्थ :- जिनके माध्यम से (भगवान् श्री) रामकृष्ण की (प्रज्ञामयी) वाणी की धारा एवं अनन्त दिव्य कर्म अभिव्यक्त हुए - उन (स्वामी) विवेकानन्द की शरण में आश्रय ग्रहण करता हूँ।

जिनके तेज का अवलोकन कर सूर्य लज्जित भाव से (प्रतिदिन आकाश में) उदित होता है; जिनके मुख-मंडल की (अद्भुत एवं विलक्षण) चारूता-सुन्दरता देख कर कामदेव अपना शरीर विसर्जित कर देता है; जिन महान् गुरु की मधुर वाणी सुनकर वीणा भी विमोहित हो जाती है- उन (स्वामी) विवेकानन्द के श्री चरणों में हम नत-प्रणत होते हैं यह स्तुति हम सब की सदा-सर्वदा रक्षा करे।

(हिन्दी अनुवाद : डॉ० केदारनाथ लाभ)

सम्पादकीय सम्बोधन

पथ हैं - विवेकानन्द

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

'विवेक शिखा' इस अंक के साथ अपने बाइसवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। यह एकमात्र हमारे परमाराध्य भगवान् श्री रामकृष्ण, जगज्जननी श्रीमाँ सारदा देवी और विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द की इस पत्रिका पर निरन्तर बरसनेवाली उनकी अशेष अहेतुकी कृपा का जीवन्त-ज्वलन्त प्रमाण है। हम निश्चय ही इस बीच अनेक बाधा-विपत्तियों से गुजरे हैं लेकिन जब कभी निराशा की घाटा घिरने लगी, हमारे पावन त्रिदेवों की कृपा-किरण ने उसे विच्छिन्न कर दिया। 'जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करहि सब कोई।।' -इस उक्ति की सत्यता चरितार्थ करने के लिए रामकृष्ण मठ एवं राम-कृष्ण मिशन के वंदनीय साधु-महात्माओं और श्रीरामकृष्ण की गृही सन्तानों ने अपने सहयोग के हाथ बढ़ाकर बराबर हमारी मुश्किलें आसान कर हमारा मनोबल बढ़ाया है। और इसमें हिन्दी भाषी क्षेत्रों की अपेक्षा अहिन्दी भाषी क्षेत्र के स्त्री-पुरुष भक्तों और साधु-सन्तों ने अधिक सहयोग किया है। मैं इन सबके प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और अपने त्रिदेवों से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी अशेष कृपा इन सब पर बरसती रहे। साथ ही, मैं आप सब से निवेदन करता हूँ कि हमारी त्रुटियों, कमियों और अनियमितताओं पर ध्यान न देकर, हमारी सीमाओं और समस्याओं के प्रति सहानुभूति रखते हुए अपना सहयोग देते रहने की कृपा करें।

मित्रो, आज हम एक ऐसे चौराहे पर खड़े हैं, जहाँ से हम किस पथ पर आगें बढ़ें यह समझ में नहीं आता। हम पथभ्रान्त पथिक की भाँति किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। हम दिशाहारा हो गये हैं। राष्ट्रीय जीवन के कर्णधार एक से बढ़कर एक महाघोटालों के महाजाल में फँस रहे हैं। लोक कल्याणकारी योजनाओं में लगाये जाने वाले सौ पैसों में मात्र पन्द्रह पैसे जनता तक पहुँच पाते हैं। और इस भ्रष्टाचार-कदाचार के जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। किसी कवि ने लिखा है -

ऊपर ही ऊपर पी जाते, जो पीनेवाले हैं।
कहते हैं, ऐसे ही जीते, जो जीनेवाले हैं।।

विदेशों से वायुयानों पर लद-लदकर भयानक अस्त्र-शस्त्र चुपचाप हमारे देश में गिरा दिये जाते हैं और हमारे सुरक्षाकर्मियों को इसका पता तक नहीं चलता। राज्य सरकारों के निर्देश में पुलिस हमारी माताओं-बहनों का शीलहरण करती हैं और किसी न्यायालय में फैसले के बाद ही मंत्री जनता से क्षमा-याचनाकर अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री मान लेते हैं। तिलक-दहेज के नाम पर स्त्रियों को जीवित जला दिया जाता है। धर्म-रक्षा के नाम पर हम आपस में एक-दूसरे को गर्दन काट देने में नहीं हिचकते। दूर-संचार माध्यमों टी० वी०, जी० टी० वी० आदि के द्वारा जो दृश्य दिखाये जा रहें हैं उनसे हमारे पारिवारिक जीवन पर असर पड़ा है। हमारे बच्चे असंयमित हो रहे हैं। परिवार टूट रहा है। अशिष्टता बढ़ रही है। भोग-लिप्सा और स्वार्थपरायणता के हम शिकार हो रहे हैं। चारों ओर एक अन्धकार दिखने लगता है। क्या हो गया है इस देवभूमि भारत को? इस महान्धकार से निकलने का पथ कया है? ऐसे प्रश्न अक्सर अनेक मित्र पूछा करते हैं।

पथ है। हमारे सामने ही पथ है। हम उस पथ को अनदेखा किये चौराहे पर ठिठके खड़े हैं। पथ पुकार रहा है और हम बहरे बने खड़े है। पथ विवेकानन्द हैं - स्वामी विवेकानन्द।

हमारे तमाम अनर्थों का, पतन का, पथभ्रान्तता का एकमात्र कारण है -हम में मनुष्यत्व का अभाव। और हमारे सभी रोगों की एक ही दवा है- मनुष्यता का गठन। हम भोग में आकंठ डूबते जा रहे हैं, क्योंकि हममें मनुष्यता नहीं रह गयी है। हम उपभोक्तावादी-अपसंस्कृति के शिकार हो गये हैं; क्योंकि हम मनुष्य नहीं है। स्वामीजी के प्रायः पाँच हजार पृष्ठों के व्याख्यानों और लेखों का यदि कोई एक सार-संक्षेप है तो वह है-मनुष्य का निर्माण करना। उन्होंने स्वयं ही कहा है-मनुष्य निर्माण करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है।

यदि हमारी केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों के अधीन कार्यरत प्रशासनिक सेवा पदाधिकारियों; राजनीतिक, शैक्षणिक, सामुदायिक योजनाओं और औद्योगिक क्षेत्रों में कार्यरत बाबुओं, कर्मचारियों तथा किरानियों के द्वारा स्वामी विवेकानन्द द्वारा निर्दिष्ट राष्ट्र-प्रेम और समर्पण के भावों का शतांश भी प्रेरणा स्वरूप ग्रहण कर लिया जाए तो हमारा देश अविलम्ब एक नयी क्रियाशक्ति से भरकर गतिशील हो जाएगा। विभिन्न राष्ट्रीय योजनाओं के क्रियान्वयन की गति में तेजी आ जायगी। पंचवर्षीय योजनाओं में गतिशीलता योजनाओं से नहीं आती बल्कि उन योजनाओं को क्रियान्वित करने वाले लोगों से आती है। सचिवालयों की संचिकाएँ स्थिर, गतिहीन होती हैं, किन्तु इन संचिकाओं को संचालित करनेवाले पदाधिकारियों, बाबुओं को जड़, मृत और गतिहीन नहीं होना चाहिए। उन्हें जीवंत, राष्ट्रप्रेम की भावना से उद्दीप्त और संकीर्ण तथा क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठा हुआ चैतन्य पुरुष होना चाहिए।

हम देखते हैं कि बात-बात में हर मामले में सरकारें जाँच समितियों का गठन कर रही हैं, फिर भी योजनाओं की प्रगति संतोषजनक नहीं है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षकों के लिए पैसे आवंटित करता हैं राज्य सरकारें उन्हें दूसरे मद में ले जाती हैं। समय पर शिक्षकों को वेतन नहीं मिलता। अवकाश प्राप्त शिक्षकों को बकाया वेतन राशि का भुगतान नहीं होता। पेंशन और ग्रेच्युइटी के पैसे नहीं मिलते। ...चिकाएँ जहाँ-तहाँ दबा दी जाती हैं। शिक्षक न्यायालय के चक्कर काटते हैं। सच पूछा जाए तो आज भारत को न्यायालय ही संचालित कर रहा है। भारत जितने मुकदमें किसी सभ्य देश में आज नहीं लड़े जाते। भारत एक प्रकार से मुकदमों का देश होकर रह गया है। इन सब के मूल में एक ही बात है। हमारे पास सही-सही मनुष्य का अभाव है। हमारे यहाँ तंत्र हैं, संस्थाएँ और संस्थान हैं किन्तु सर्वत्र मनुष्य-शिक्षित, प्रशिक्षित, राष्ट्रनुराग की अग्नि से ज्वाज्वल्यमान, त्याग और सेवा-भाव के अग्नि-मंत्र से दीक्षित-मनुष्य चाहिए।

स्वामी जी ने अपने देशवासियों से इसी मनुष्य बनने की अपेक्षा की थी। उन्होंने मनुष्य की महिमा बताते हुए उद्घोष किया था-"एक बात पर विचार करके देखिए, मनुष्य नियमों को बनाता है या नियम मनुष्य को बनाते हैं? मनुष्य रुपया पैदा करता है या रुपया मनुष्यों को पैदा करता है? .... मेरे मित्रो, पहले मनुष्य बनिए, तब आप देखेंगे कि वे सब बाकी चीजें स्वयं आपका अनुसरण करेंगी। परस्पर के घृणित द्वेषभाव को छोड़िए..... और सदुद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस एवं सद्भाव का अवलम्बन कीजिए। आपने मनुष्य योनि में जन्म लिया है तो अपनी कीर्ति यहीं छोड़ जाइए।"

मद्रास के विक्टोरिया हॉल में दिये गये अपने प्रसिद्ध व्याख्यान 'मेरी क्रान्तिकारी योजना' में स्वामीजी ने इसी भाव को दुहराते हुए जोरदार शब्दों में कहा-'मनुष्य, केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप हो जाएगा। आवश्यकता हे वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न और दृढ़ विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। ऐसे सौ मिल जाएँ, तो संसार का कायाकल्प हो जाए। इच्छाशक्ति संसार में सब से अधिक बलवती है। उसके सामने दुनिया की कोई चीज नहीं ठहर सकती।"

मनुष्य बनने के लिए मानव निर्माणकारी शिक्षा की परम आवश्यकता है। आज हमारी शिक्षा-व्यवस्था हमें विचारों, दूसरों के मतों के गट्ठर लाद देती है। वह हमें दृढ़ धारणा, विश्वास और सम्प्रत्यय नहीं देती। महत् विश्वास ही महत् कार्यों की जननी है। इसलिए स्वामीजी ने मानव निर्माणकारी, चरित्र निर्माणकारी, विभिन्न विचारों को आत्मसात् करनेवाली, पचा लेनेवाली शिक्षा की महत्ता पर जोर दिया है। हमें इसे अपनाना ही होगा।

इस भौतिकवादी चकाचौंध में हम अपनी मूल प्रकृति, धर्म भाव को तेजी से छोड़ते चले जा रहे हैं। मित्रो, धर्म भारतवर्ष की मूल प्रकृति है, इसका मेरुदण्ड है, मर्मस्थल है। धर्म को त्यागकर हम जी नहीं सकते। अपनी प्रथम विदेश यात्रा के उपरान्त विश्वविजेता के रूप में स्वदेश लौटने पर, भारत की मिट्टी पर पहले-पहल पैर रखने पर रामनाद में अपने अभिनन्दन का उत्तर देते हुए 'स्वामीजी ने हमें इसी तथ्य की ओर ध्यान दिलाया था- "जिस प्रकार यदि किसी आदमी के मर्मस्थान में कोई आघात न लगे अर्थात् यदि उसका मर्मस्थान दुरुस्त रहे, तो दूसरे अंगों में कितनी ही चोट लगने पर भी उसे सांघातिक न कहेंगे, उससे वह मरेगा नहीं, उसी प्रकार जब तक हमारी जाति का मर्मस्थान सुरक्षित है उसके विनाश की कोई आशंका नहीं हो सकती। अतः भली भाँति स्मरण रखिए, यदि आप धर्म को छोड़कर पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के पीछे दौड़िएगा। तो आपका तीन ही पीढ़ियों में अस्तित्व लोप निश्चित है। क्योंकि इस प्रकार राष्ट्र

का मेरुदण्ड ही टूट जाएगा-जिस भित्ति के ऊपर यह राष्ट्रीय विशाल भवन खड़ा है, वही नष्ट हो जायगा, फिर तो परिणाम सर्वनाश होगा ही। अतएव, हे भाइयो, हमारी राष्ट्रीय उन्नति का यही मार्ग है कि हमलोगों ने अपने पुरखों से उत्तराधिकार स्वरूप जो अमूल्य सम्पत्ति पायी है, उसे प्राणपण से सुरक्षित रखना ही अपना प्रथम और प्रधान कर्तव्य समझो।''

जातीय द्वेष से हमारा देश झुलस रहा है। हम अपने ही देशवासियों से स्वार्थवश प्रेम नहीं करते। त्याग, सेवा और प्रेम ये ही हमारे राष्ट्रीय आदर्श हैं। त्याग-भाव के बिना सेवा नहीं हो सकती और प्रेम विहीन सेवा मात्र औपचारिकता होती है। निश्छल प्रेम से सेवा के सुमन में सुगंध भर जाती है। स्वामीजी कहते हैं - और किसी बात की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है केवल प्रेम, अकपटता और धैर्य की। जीवन का अर्थ है वृद्धि अर्थात् विस्तार, यानी प्रेम है। इसलिए प्रेम हीं जीवन है .... और स्वार्थपरता ही मृत्यु है। ..... परोपकार ही जीवन है, परोपकार न करना ही मृत्यु है। .. ... ऐ बच्चो, जिसमें प्रेम नहीं है वह तो मृतक है। ऐ बच्चो, सबके लिए तुम्हारे दिल में दर्द हो-गरीब, मूर्ख, पददलित मनुष्यों के दुःख का तुम अनुभव करो, संवेदना से तुम्हारे हृदय की क्रिया रुक जाय, मस्तिष्क चकराने लगे, तुम्हें ऐसा प्रतीत हो कि हम पागल तो नहीं बन रहे हैं फिर ईश्वर के चरणों में अपना दिल खोल दो, तभी शक्ति, सहायता और अदम्य उत्साह तुम्हें मिल जायेगा।

हमें अपने देश के लिए बिना इसके दोषों को कोसे हुए अपनी बलि देनी होगी। स्वामीजी का कितना अच्छा, प्रेरक और सुन्दर संदेश है यह -'ऐ मेरे स्वदेशवासियो, मेरे मित्रो, मेरे बच्चो, राष्ट्रीय जीवन रूपी यह जहाज लाखों लोगों को जीवन रूपी समुद्र के पार करता है। ...... पर आज शायद तुम्हारे ही दोष से इस पोत में कुछ खराबी हो गयी है, इसमें एक-दो छेद हो गये हैं तो क्या तुम इसे कोसोगे? संसार में जिसने तुम्हारा सबसे अधिक उपकार किया है, उसके विरुद्ध खड़े होकर उस पर गाली बरसाना क्या तुम्हारे लिए उचित है? हम तो उसकी सन्तान हैं। आओ चलें, उन छेदों को बन्द कर दें। उसके लिए हँसते-हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें और यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें मर जाना ही उचित है। हम अपना भेजा निकालकर उसकी डाट बनाएँगे और जहाज के उन छेदों में भर देगें। पर उसकी कभी भर्त्सना न करें।''

मित्रो, यह है विवेकानन्द - मार्ग हमारी राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान का। आइए, हम इस मार्ग पर चलें। अपने राष्ट्र, गौरवशाली राष्ट्र के पुनरुद्धार के लिए हमारे एकमात्र प्रशस्त, पुण्य पथ हैं विवेकानन्द, युगनायक स्वामी विवेकानन्द।

अपील
श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा का
हस्तान्तरण - समारोह

प्रिय बन्धुओ,

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के परम अन्तरंग लीला-पार्षद स्वामी अद्भुतानन्दजी महाराज (लाटू महाराज) की जन्मभूमि के जिला-मुख्यालय में अवस्थित श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा का आगामी रामनवमी,११ अप्रैल, २००३ को विश्व विख्यात रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ द्वारा कृपा पूर्वक अधिग्रहण किया जायगा। इस अवसर पर ११ से १३ अप्रैल तक एक त्रिदिवसीय हस्तान्तरण-अधिग्रहण समारोह का आयोजन किया गया है जिसमें रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के महासचिव श्रीमत् स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज, सहायक सचिव श्रीमत स्वामी सुहितानन्द जी महाराज सहित प्रायः ३० वरिष्ठ साधुगण भाग लेंगे। इस समारोह में लगभग १,००००० (एक लाख) रुपयों के व्यय होने का अनुमान है। अतएवं, आप से हार्दिक अनुरोध है कि आप उदारतापूर्वक दान देकर इस धर्मयज्ञ की सफलता में सहभागी होने की कृपा करें। कहना न होगा कि आपका कोई भी दान हमारे लिए एक बड़ा दान होगा। चेक, ड्राफ्ट आदि ''रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार)'' के नाम से भेजने की कृपा करें।

ठाकुर सेवा में आपका

डॉ० केदारनाथ लाभ (सचिव)
रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम
जय प्रकाश नगर, छपरा- ८४१३०१ (बिहार)

विवेकानन्द-वन्दना

- डॉ० केदारनाथ लाभ

भक्तिमती भुवनेश्वरी, विश्वनाथ गुणधाम।
इनके तनय नरेन्द्र को, बारम्बार प्रणाम।।
मूर्त महेश्वर ताप-हर वीरेश्वर सुखकन्द।
शुद्ध बुद्ध आनन्दघन, जयतु विवेकानन्द।।

जय यतिराज स्वराज-बिहारी। जय विवेक-वन विचरणहारी।।
ध्यानसिद्ध योगेश्वर योगी। जय सच्चिदानन्द - रस भोगी।।
अनासक्त अनिकेत विरागी। दीन - दरिद्र - दलित - अनुरागी।।
तापित - शापित जन के त्राता। सेवा - प्रेम - मंत्र - उद्गाता।।
अन्तर भक्ति, दृष्टि विज्ञानी। कर्मवीर वाणी - कल्याणी।।
बज्र कठोर प्रचण्ड शक्तिधर। सतत कमल - कोमल उर-अन्तर।।
जय गन्दर्भ-कंठ युग नायक । जय जय अभय मुक्ति-वरदायक।।
रामकृष्ण पद-कंज भ्रमर-मन। वरदा माँ सारदा हृदयं-धन।।

तुम विशाल वट वृक्ष हो, यह भव-सिन्धु अपार।
आये धर नर-देह तुम, करने जन को पार।।

भुज विशाल युग आयत लोचन। रूप अनूप सकल दुःख-मोचन।।
चारु चन्द्र-मुख सुख-संचारी। पाप ताप भव-आतप-हारी।।
गिरि वन नगर ग्राम पथचारी। गैरिक वसन कमण्डलुधारी।।
युगाचार्य गुरु मुक्ति-प्रदाता। अभिनव मानव-धर्म विधाता।।
विश्वधर्म संसद के नायक। जय अद्वैत सुधाम्बु प्रदायक।।
तुम पूरब पश्चिम के संगम। सचल धर्म, भू पर शिव जंगम।।
घनीभूत भारत तुम स्वामी। तपःपूत मति अमल अकामी।।
बुद्ध व्यास शुकदेव समाहित। तुम में शंकर-ज्ञान प्रवाहित।।

तुम अनन्त के सेतु प्रभु, तुम कर्मठ वेदान्त।
कोटि-कोटि जन दीन के, स्वामि सखा तुम कान्त।।
तुम करुणा मन्दाकिनी, ताप-तप्त मैं तीर।
जनम-जनम की प्रभु हरो, भव बाधा मम पीर।।

युवशक्ति-प्रवाह के भगीरथ- विवेकानन्द

- स्वामी शशांकानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची

युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द जब परिव्राजक के रूप में भारत भ्रमण कर रहे थे, उस समय की बात है। दक्षिण भारत के महाबलेश्वरम् नामक स्थान में वे एक वकील के घर में अतिथि के रूप में टिके हुए थे। वकील साहब का एक छोटा लड़का था जो भयंकर रूप से रोया करता था। जिस रात वह रोना शुरू करता तो उस रात घर में कोई भी सो नहीं पाता था क्योंकि उसका रुदन-क्रंदन बड़ा ही भयंकर था। एक दिन स्वामी जी ने उस बच्चे के माता-पिता से कहा, "अच्छा, क्या आप लोग इस बच्चे को मुझे देंगे? आज रात मैं इसका तत्त्वावधान करूँगा।" बच्चे की माँ ने कहा, 'स्वामी जी! बच्चा देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु आप बच्चे का रोना चिल्लाना कैसे बंद कर सकेंगे?" मैं माँ होकर जब उसे चुप नहीं करा पाती तो आप कैसे कर पायेंगे? स्वामीजी ने कहा, 'ठीक है, मुझे प्रयास करने दो।' माँ के राजी होने पर स्वामी जी ने उस बच्चे को अपनी गोद में रख कर ध्यान करना शुरू किया। सारी रात उसे अपनी गोद में रखे हुए ऐसा चमत्कार दिखाया कि सारी रात में एक बार भी बच्चा नहीं रोया अपितु शान्त होकर स्वामी जी की गोदी में सोया रहा।

घटना छोटी होते हुए भी बड़ी ही महत्वपूर्ण और युव-समाज के सम्बन्धित है। आज का युव-समाज उसी बच्चे की तरह भौतिकवाद रूपी माता की गोद में शान्ति नहीं पा रहा है। निराशा, हताशा और जगत के खोखलेपन में बिलख-बिलख कर रो रहा है। वह मानो बिखरा हुआ है। विशृंखलता, अनुशासनहीनता, हिंसा, खून-खराबी ही उसका रुदन-कंदन है।

भौतिकवाद उसे चुप कराने में असमर्थ है और भौतिकवाद को यह संदेह होता है कि उसे आध्यात्मिकता शान्त कर सकेगी। इस युग में युव-समाज को उस रोने वाले बच्चे की तरह स्वामी विवेकानन्द की गोदी चाहिए जहाँ वह आध्यात्मिकता की लोरियों में सोया रहे।

प्रश्न तो यह उठ सकता है कि, 'उत्तिष्ठत्! जाग्रत! प्राप्यवरान्निबोधत्' का डंका बजाने वाले विवेकानन्द की गोद में युव-समाज कैसे सो सकेगा? उसे तो उठना है, जागना है और लक्ष्य की प्राप्ति न करने तक सोना नहीं है। तो मैं पुनः कहता हूँ कि युव-समाज स्वामी विवेकानन्द की गोदी में सो जाएगा- वह सो जाएगा। इस विनाशकारी विध्वंसात्मक विश्रृंखल जगत में उसका यह हिंसात्मक रुदन कंदन थम जाएगा, वह इन्द्रियों और मन की पराधीनता से मुक्त हो कर, स्वार्थ और असंयम के जगत में सोया रहेगा। परन्तु वह जागेगा सृजनात्मक, गठनात्मक, निःस्वार्थ जगत में, वह जागेगा ज्ञान-विज्ञान के जगत में, प्रकृतिस्वरूप अन्तरात्मा के जगत में। वहाँ कोई किसी का पराया नहीं, शत्रु नहीं। तभी जगत् ब्रह्ममय होगा। उसी प्रगाढ़ आनन्द निद्रा में युव-समाज शान्त और आनन्दपूर्ण हो उठेगा एवं संचार करेगा उस युवशक्ति का जो देश-देशान्तर में शान्ति, मैत्री, प्रेम ओर करुणा पहुँचाएगी और ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी बहा देगी। यही तो स्वामी विवेकानन्द का चमत्कार है और स्वामी जी की गोद में सोने का अर्थ है रामकृष्ण-विवेकानन्द के भाव को ग्रहण करना।

युवावस्था मानव जीवन की श्रेष्ठतम अवस्था है और मानव शक्ति की चरम सीमा है। अतः युव-शक्ति मानव-जीवन की सबसे प्रबल शक्ति है। किन्तु कोई भी शक्ति स्वयं में अच्छी या बुरी नहीं होती, शुभ या अशुभ नहीं होती। अच्छी या बुरी दिशा में परिचालित होने के कारण या उसके सदुपयोग या दुरुपयोग करने से ही शक्ति का कार्य अच्छा या बुरा होता है। अतः कोई शक्ति बुरी तब ही होती है जब उसका दुरुपयोग किया जाय।

प्रबल वेगवती युव-शक्ति बड़ी ही भयंकर हो सकती है। वेगवती नदी के प्रवाह की भाँति ही उसकी गति में बाधा देने से बाढ़ आ जाएगी और विनाश अपनी चरम सीमा पर तांडव नृत्य करने लगेगा। अतः युव-शक्ति प्रवाह का अवरोध न करके उसे यथार्थ दिशा की ओर संचालित करना ही श्रेष्ठ है क्योंकि तब वह उद्दाम वेग से आने वाला भयंकर स्रोत देवसरिता माँ जाह्नवी की भाँति ही मानव-सृजन का कार्य करेगी। आज युव शक्ति मन्दाकिनी को पूत सलिला गंगा की भाँति मानव-कल्याणकारी होने के लिए राजा भगीरथ के स्थान पर स्वामी विवेकानन्द रूपी शिल्पी की आवश्यकता है जो उसके प्रवाह को यथार्थ दिशा में ले जा सके।

पुनः युव शक्ति एक बुलडोजर की भाँति है जो चलने पर निर्विचार उसके सामने जो भी वस्तु आये उसे ठकेल कर कुचलकर भूमिसात् कर देती है। किन्तु उसी बुलडोजर की सहायता से रास्ता निर्माण का कार्य टूटे-फूटे खंडहरों को गिराने का कार्य किया जाता है। कमाल तो यंत्री का है जो बुलडोजर पर यदि नियंत्रण रखे तो उसे एक उपयोगी दिशा मिलेगी।

युव शक्ति को एक उपयुक्त दिशा मिल सके, इसी उद्देश्य से भारत सरकार ने उनके जन्मदिन को राष्ट्रीय युव-दिवस घोषित किया है ताकि भारत के युवकों और युवतियों को यह ज्ञात हो कि एक युवक या युवती के लिए स्वामी विवेकानन्द का इस पृथ्वी पर आगमन महत्त्वपूर्ण है। स्वामी विवेकानन्द का जीवन और उनकी वाणी ही युव-समाज का नेतृत्व कर सकती है, उसे ध्वंसात्मक एवं नकारात्मकए स्वार्थ एवं कामना पूर्ति के मार्ग से हटाकर प्रेम, दया, त्याग और सेवा के मार्ग पर संचालित करके विश्वकल्याण के कार्य में लगा सकती है। चारित्रिक बल और मनुष्यत्व के द्वारा भौतिक समृद्धि के साथ-साथ त्याग और सेवा का मार्ग प्रशस्त करा सकती है।

स्वामी विवेकानन्दजी की वाणी मानव-विकास का विज्ञान है, मानव संभावनाओं को अभिव्यक्त करने की प्रयुक्ति है तथा अन्तर्निहित सूक्ष्मातिसूक्ष्म दिव्यात्मा को प्रकाशित करने के लिए सर्वश्रेष्ठ अणुवीक्षण यन्त्र है। इस विज्ञान, प्रयुक्ति और यंत्र की सहायता से युव-समाज अपनी बिखरी हुई शक्तियों को नष्ट न कर मानव-जीवन के उद्देश्य की पूर्ति में सफल अवश्य होगा।

स्वामी विवेकानन्द बार-बार उपनिषद् के इस श्लोक को उद्धृत करते हुए एक आदर्श युवक की कल्पना करते थे, 'युवस्यात् साधु-युव, अध्यायकः, आशिष्टः, दृढ़िष्ठः, बलिष्ठः। अर्थात् युवक एक अच्छा युवक हो। किन्तु केवल अच्छा होना ही यथेष्ट नहीं उसे शिक्षित भी होना चाहिए क्योंकि शिक्षा उसे गाय आदि पशुओं से श्रेष्ठ मनुष्य-बुद्धि प्रदान करती है। पढ़ा-लिखा होना ही काफी नहीं है यदि वह आशावादी न हो, अपने संकल्प में दृढ़ न हो, सत्य में अडिग न हो। आत्मश्रद्धा सबसे बड़ा गुण है जो उसे सफल बना सकता है। अपने लक्ष्य पर दृढ़ता से टिके रहना ही सफलता की कुंजी है। फिर यह सब होने पर भी शारीरिक बल भी आवश्यक है। फौलाद के पुट्ठे और लोहे की पेशियाँ होनी चाहिए।

इन सब गुणों के साथ-साथ यदि वह अर्थोपार्जन की क्षमता रखता हो तो सोने में सुहागा ही होगा। अतः उपनिषद् कहते हैं," तस्येयं पृथिवी सर्व वित्तस्य पूर्णस्यात्।" और यदि ये सब गुण एक युवक में उपस्थित हो जाएँ तब ही वह आनन्द को प्राप्त होता है- "स एको मनुषा आनन्दः।"

इन सबके अतिरिक्त उसे आध्यात्मिक विद्या की अनुभूति भी होनी चाहिए जिससे मानव-विकाश हो, उन्नति और तृप्ति हो। अन्तर्निहित आत्मा की अनुभूति वह कर सके और दूसरों को भी करा सके। दूसरे प्राणियों के प्रति प्रेम, दया, क्षमा, सहनशीलता का उदय हो।

स्वामीजी चाहते थे कि हमारे युवक पहले स्वयं अपने भीतर अन्तर्निहित मानव-संभावनाओं को, दिव्यसंभावनाओं को व्यक्त करें और दूसरों को ऐसा करने में सहायता करें। साधन है 'शिव ज्ञान से जीव-सेवा' जन साधारण में, दरिद्र, रोगी और मूर्ख पद-दलितों में नर-नारायण के दर्शन करते हुए सत्य, अहिंसा, प्रेम और सहानुभूति के मधुर वातावरण में त्याग और सेवा के आदर्श पर युव-समाज को उसके परम लक्ष्य-मुक्ति पर अग्रसर कराना ही युव-शक्ति प्रवाह को प्रकृत दिशा दिखाना है- उद्दाम वेग से आने वाले भयंकर जल स्रोत को पुण्य सलिला जाह्नवी में रूपान्तरित करना है। स्वामी जी कहते हैं, "जब तुम्हारी जीवात्मा प्रबुद्ध होकर सक्रिय हो उठेगी, तब तुम आप ही शक्ति का अनुभव करोगे, महिमा और महत्ता पाओगे, साधुता आएगी, पवित्रता भी आप ही चली आएगी।- मतलब यह है कि जो कुछ अच्छे गुण हैं, वे सभी तुम्हारे पास आ पहुँचेंगे।" "उत्तिष्ठत्! जाग्रत! प्राप्यवरान्निबोधत्!

अतः हे युवको, आत्म महिमा में प्रतिष्ठित होकर अदम्य उत्साह, पवित्रता एवं निष्काम भाव से दूसरों को आत्म महिमा में प्रतिष्ठित कराओ। (Be and Make)

यही है स्वामी जी के चमत्कार का रहस्य। उन्होंने अपने गुरुदेव श्री रामकृष्ण देव के चरणों में बैठ कर उस प्रयुक्ति को पाया था जो उन्हें पाश्चात्य विज्ञान, पाश्चात्य दर्शन, डेकार्ट के अहंवाद ह्युम के और बेन के नास्तिकवाद, डार्विन के विकासवाद और स्पेन्सर के अज्ञातवाद की झोली में नहीं मिल पायी थी और न ही तत्कालीन समाज सुधारकगण, धर्म नेता ही दे सके थे। इसी प्रयुक्ति (Technology) के द्वारा ही वे अपने अन्तर में उठती हुई युवशक्ति के प्रलयंकारी वेग को शान्त कर पाये थे और उसी के द्वारा उनहोंने अमरीका में एक अपूर्व शक्ति का विस्फोरण कर के सारी पृथ्वी को हिला डाला था। उसी प्रयुक्ति के द्वारा ही उन्होंने एक ऐसी नहर खोद डाली जिसमें भयंकर युव-शक्ति का प्रबल वेग वीणा की झंकार की भांति मधुर स्वरों को गुनगुनाते हुए देव सलिला जाह्नवी बन चुका है, बन रहा है और बनता रहेगा। □

"पहले एकान्त में बैठकर धर्म-जीवन को अच्छी तरह गढ़ लेना होगा, पूर्ण रूप से त्यागी होना होगा और अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा। तुम लोगों के भीतर तमोगुण आ गया है- तो उससे क्या हुआ? उसका नाश क्या नहीं हो सकता? एक ही बार में हो सकता है। इस तमोगुण का नाश करने के लिए ही तो भगवान श्रीरामकृष्ण देव अवतरित हुए थे।" -स्वामी विवेकानन्द

✦✦✦✦✦

आधुनिक मानव और सेवायोग

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकान्द स्मारक, पोरबन्दर

जो कुछ है सो तू ही है

श्री रामकृष्ण कलकत्ता में काशीपुर के बगीचे में कैंसर का ईलाज करवा रहे थे। नरेन्द्र नाथ (जो बाद में स्वामी विवेकानन्द जी के नाम से विश्वविख्यात हुए), तब आध्यात्मिक अनुभूति के लिए बहुत व्याकुल थे। एक दिन उन्होंने श्री रामकृष्ण से आग्रह पूर्वक अनुरोध किया कि उन्हें आध्यात्मिक अनुभूते करवा दें। श्री रामकृष्ण देव जी ने कहा, 'तुम पहले अपने परिवार की कोई व्यवस्था कर आओ; तब तुम्हें सब मिल जाएगा। तुम्हें क्या चाहिए? नरेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया, 'मैं तो हमेशा समाधि की अवस्था में लीन रहना चाहता हूँ।' अन्य कोई गुरु होता तो जरूर प्रसन्न हो जाता, पर यह तो थे अनन्य शिष्य के अनन्य गुरु। श्री रामकृष्ण देव ने कहा, 'तुझे धिक्कार है। मैं तो सोचता था कि तू तो एक विशाल वट वृक्ष की तरह बनेगा, जिसकी छाया में बैट कर लाखों लोग, नर-नारी शांति पाएंगे। पर तू तो सिर्फ अपनी ही मुक्ति की बात करता है। अपने ही आनन्द की बात करता है। अरे, समाधि से भी उच्चतर स्थिति है। क्या तू वह भजन नहीं गाता-जो कुछ है सो तू ही है?''

श्री रामकृष्ण देव और विवेकानन्द, दोनों का यह प्रिय भजन था-आखरी मुगल बादशाह जफ़र का लिखा सूफी गीत, जिसमें वेदांत का स्पप्ट संदेश है। सर्व व्यापक ईश्वर को लक्ष्य करके कवि कहता है कि -

तुझसे हमने दिल को लगाया,
जो कुछ है सो तू ही है।
एक तुझको अपना पाया,
जो कुछ है सो तू ही है।

श्री रामकृष्ण देव कहते हैं कि यदि आंख बन्द करके ध्यान कर सकते हैं तो, आंख खोल कर भी ध्यान कर सकते हैं, कारण यह है कि ईश्वर विभिन्न रूपों में रहता है।

हरेक मनुष्य के हृदय में रहती दिव्य चेतना को लक्ष्य कर कवि कहता है कि -

सबके मकान दिल का मकीं तू,
कौन सा दिल है जिसमें नहीं तू।
जहाँ भी देखा तू ही नज़र आया,
जो कुछ है सो तू ही है।।

गीता में भगवान् श्री कृष्ण भी कहते हैं- 'ईश्वर: सर्वभूतानम् हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'

हे अर्जुन, सब जीवों के हृदय में ईश्वर का निवास होता है।'

'कठोपनिषद्' में भी कहा है - एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते' 'हर एक जीव में यह आत्मा छिपी हुई है।'

कवि जीव की समानता की बात करते हुए कहता है,
क्या मलायक क्या इन्सान,
क्या हिन्दू क्या मुसलमान।
जैसा चाहा तूने बनाया,
जो कुछ है सो तू ही है।।

वेदों में कहा है -'एकम् सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' 'सत्य एक ही है, ज्ञानी उसका विविध प्रकार से वर्णन करते हैं।' श्री रामकृष्ण देव ने अपनी जीवन की प्रयोगशाला में विभिन्न धर्मों का पालन विभिन्न भाव से करके 'परम सत्य' के अनुभव की घोषणा की थी- 'जितने मत उतने पथ।' हरएक धर्म एक ही परम सत्य की ओर ले जाता है।' सर्व धर्म समभाव की भावना से कवि कहता है कि -

काबा में क्या देवल में क्या,
तेरी परस्ती होगी, सब जॉ।
सभी ने तुझको सिर है झुकाया,
जो कुछ है सो तू ही है।।

'ईशावस्योपनिषद' में कहा है -

'ईशा वास्यमिदम् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्'

'जगत में जो कुछ भी है सब ईश्वर से ओत प्रोत है।' कवि इस सर्वव्यापक ईश्वर को लक्ष्य करके कहता है-

अर्श से लेकर फर्श ज़मीं तक,
और ज़मी से अर्श बरी तक।
जहाँ मैं देखा तू ही नज़र आया,
जो कुछ है सो तू ही है।

जीवन की सार्थकता सर्वव्यापक ईश्वर को स्वीकारने में ही है। यह ज्ञान 'कवि ज़फर' ने बहुत अधिक विचार

करने के बाद पाया -

सोचा समझा देखा भाला,
तुझ जैसा कोई न ढूँढ निकाला।
अब यह समझ में ज़फर की आया,
जो कुछ है सो तू ही है।।

महाकवि नरसिंह मेहता का भजन 'अखिल ब्रह्मांड में एक तू श्री हरि' का संदेश भी उपर्युक्त सूफी गीत में मिलता है।

प्रख्यात वैज्ञानिक आईन्स्टाईन ने एक अमूल्य समीकरण दिया था - $E+mc^2$ इसी तरह हमारे ऋषियों ने एक समीकरण दिया था - जीव= शिव । यह समीकरण हम भूल गए हैं। इसका स्मरण करवाने के लिए श्री रामकृष्ण देव का अवतार हुआ था।

उपनिषदों में दो प्रकार के ब्रह्म की बात कही गयी है- पर ब्रह्म (Transcendental Brahman) और अपर ब्रह्म (Immanent Brahman) सैकड़ों वर्षों से हम अपरब्रह्म सर्वव्यापक ब्रह्म की उपासना की बात भूल गए हैं तथा जगत को ब्रह्ममय देखना भी भूल गए हैं। जगत की दूसरी ओर ईश्वर को पाने के लिए, अपनी मुक्ति की लालसा में, जगत में रहने वाले दुखीः जीवों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को भूल गये हैं। इसलिए श्री रामकृष्णदेव ने अपने जीवन-संदेश द्वारा यह बात अपने आज के वैज्ञानिक युग में प्रमाणित करके बताई और पुनःप्रस्थापित की।

एक बार श्री रामकृष्ण देव गंगा नदी के किनारे बैठे थे तो उन्होंने देखा कि दूर नदी में दो नाविकों के बीच झगड़ा चल रहा था। एक नाविक ने दूसरे नाविक की पीठ पर जोर से मारा। श्री रामकृष्ण देव दर्द से चीख उठे। उनका भानजा तुरन्त दौड़ कर आया। आकर उसने देखा कि श्री रामकृष्ण देव की पीठ लाल हो गई है। हृदयराम तुरन्त बोला, 'मामा, बोलो किसने आपकी पीठ पर मारा? आज उसकी खैर नहीं।' श्री रामकृष्ण देव ने जब बताया कि उनकी पीठ पर नहीं पर एक नाविक की पीठ पर दूसरे नाविक ने मारा जिसके दर्द से उनकी पीठ लाल हो गई। तब हृदयराम अवाक् रह गया। कितनी अदभुत् अद्वैतानुभूति है? ऐसी कितनी ही अद्वैतानुभूति के जीवंत उदाहरण श्री रामकृष्ण देव के जीवन में देखने को मिलते हैं। अपनी इस अनुभूति के बाद उन्होंने 'शिवज्ञान से जीव सेवा' का संदेश दिया था। इसलिए यह इतना प्रभावशाली बना।

शिवज्ञान और जीव सेवा

एक बार रामकृष्ण देव ने दक्षिणेश्वर में भक्तों के साथ वार्तालाप करते समय श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के बारे में कहा 'इस संप्रदाय के तीन उपदेश मुख्य हैं- 'नामे रूचि' (प्रभु के नाम में रूचि), 'वैष्णवेर सेवा'(वैष्णवों की सेवा) और 'जीवे दया' (जीवों पर दया)। 'जीवे दया' शब्द बोलते समय श्री रामकृष्ण देव भावावेश में आ गए। थोड़ी देर बाद अर्धबाह्य दशा में आकर बोलने लगे, 'जीव पर दया! जीव पर दया! अरे पृथ्वी पर रहने वाला एक क्षुद्र कीड़ा दूसरे पर दया जताएगा? तू दया जताने वाला कौन है? नहीं! हर एक जीव शिव स्वरूप है। जीव की शिवज्ञान से सेवा करनी चाहिए।'

आत्मा की गहराई से निकले ये शब्द सबने सुने, पर नरेन्द्रनाथ के अलावा किसी ने इस के मर्म को नहीं समझा। अंदर से बाहर निकलते समय उन्होंने कहा, 'गुरुदेव के इन अद्भुत् शब्दों में मैंने अपूर्व प्रकाश देखा! सामान्य तरीके से कठोर और कर्कश वेदान्त ज्ञान - ज्ञान और भक्ति को कितने मधुर ढंग से मिला कर समझा दिया! अगर ईश्वर की इच्छा होगी तो इस महान सत्य को जगत के समक्ष रखूँगा। चाहे पंडित हो या मूर्ख, राजा हो या रंक, ब्राह्मण हो या भंगी हो सब इस सत्य का साक्षात्कार कर सकें, ऐसा मैं करूंगा।

ईश्वर ने उन्हें यह अवसर प्रदान किया। श्री रामकृष्ण देव की महा समाधि के बाद संन्यास व्रत लेकर नरेन्द्र नाथ स्वामी विवेकानन्द बने। परिव्राजक के रूप में उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया, शिकागो में आयोजित विश्वधर्म सभा में सनातन धर्म का झंडा फहराया। चार वर्ष तक वेदांत का प्रचार कर १८९७ में भारत वापस आकर उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की-'शिवज्ञान और जीव सेवा' का संदेश मूर्तरूप से देने के लिए। आज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन की देश-विदेश में १४८ केन्द्रों द्वारा करोड़ों रूपयों के खर्च से लाखों लोगों की सेवा के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के कितने ही सेवा कार्य चल रहे हैं। १४ इनडोर अस्पताल, ६५ आऊटडोर अस्पताल, २८ मोबाईल डिस्पैन्सरी २६५९ शैक्षणिक संस्थाएं (कुल विद्यार्थी-१,६८५६६) ग्रामीण और आदिवासी विकास के कार्य, राहत कार्य, विभिन्न भाषाओं में प्रकाशन का कार्यक्रम चल रहा है। बहुत लोग यह समझते हैं कि रामकृष्ण मिशन एक समाजसेवी संस्था है। पर यह तो एक आध्यात्मिक संस्था है जिसका आदर्श है -- 'अपनी आत्मा की मुक्ति और जगत का हित करना। आत्मनो माक्षार्थं जगत् हिताय ।

स्वामी विवेकानन्द ने भी पहले अद्वैतानुभूति होने के बाद ही इस सेवायोग का प्रचार किया था। इसलिए ही यह

इतना प्रभावशाली बना। जब वे विद्यार्थी थे तब भी इस विषय पर उन्होंने श्री रामकृष्ण देव से तर्क किया था।

जीवन के व्यवहार में वेदान्त

एक दिन श्री रामकृष्ण देव नरेन्द्र नाथ को जीव और ब्रह्म की एकता के बारे में समझाने की कोशिश कर रहे थे। थोड़ी देर बाद नरेन्द्रनाथ बाहर गए और वहाँ एक महाशय के पास आकर श्रीरामकृष्ण देव के कहे संदेश की हँसी उड़ाने लगे और हँसते-हँसते बोलने लगे, 'यह घड़ा, यह प्याला ब्रह्म और हम भी ब्रह्म! इससे विचित्र बात कोई और हो सकती है?' श्री रामकृष्ण देव ने नरेन्द्रनाथ का यह हास्य सुना। वह बाहर आए और नरेन्द्रनाथ का स्पर्श किया। इस स्पर्श का अद्भुत प्रभाव पड़ा। तत्क्षण उन्हें सब कुछ ब्रह्ममय दिखने लगा। खाने बैठे तो भोजन, थाली परोसने वाला व्यक्ति और स्वयं खुद सब ही ब्रह्म स्वरूप हैं, ऐसी अनुभूति हुई। हर एक कार्य करते समय उन्हें सर्वत्र ब्रह्म दर्शन होने लगे। गीता में एक श्लोक है- 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः.....' और उपनिषद का संदेश 'सर्वम् खुल इदम्-ब्रह्म' का साक्षात्कार स्वामी जी ने इस तरह युवावस्था में ही कर लिया था। जब वे परिव्राजकरूप में भारत भ्रमण कर रहे थे तो ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान उन्हें अल्मोड़ा में प्राप्त हुआ था।

हिमालय में भ्रमण करते-करते स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने गुरूभाई स्वामी अखंडानन्दजी के साथ अल्मोड़ा की तरफ जा रहे थे तब अल्मोड़ा से कोई २० कि०मी० दूर काकरीघाट नाम की जगह पर एक विशाल वटवृक्ष की छाया में एक सुंदर झरने के पास वे ध्यान-मग्न हो गए। एक घंटे के बाद उन्होंने स्वामी अखंडानन्दजी से कहा, 'गंगाधर', इस वटवृक्ष के नीचे मेरे जीवन की एक जटिल समस्या सुलझ गई है।' इसके बाद उन्होंने ब्रह्म (macrocosm) और पिंड (microcosm) की एकता के अद्भुत दर्शन की बात बतायी।

आज तो आधुनिक विज्ञान ने भी प्रमाणित कर दिया है कि विश्व के सभी परमाणु एक दूसरे से परस्पर मिले हुए हैं। डेविड बोदम ने अपने एक प्रयोग में कहा है कि सारा जगत होलिस्टिक (Holistic) है। नोबल पुरस्कार विजेता प्रख्यात वैज्ञानिक श्रीकिंजर ने यह सत्य सुन्दर तरीके से बताया हे कि 'Conciousness is singular of which plural is unknown' (चेतना तो एक ही है, इसका अन्य रूप अज्ञात है)'

एक बार सिस्टर निवेदिता ने स्वामी विवेकानन्द से पूछा, 'क्या यह बात सच है कि बौद्ध धर्म कहता है कि आत्मा (एक) मिथ्या है और जगत (अनेक) सत्य है, जबकि हिन्दू धर्म कहता है कि ब्रह्म (एक) सत्य है और जगत (अनेक) मिथ्या है? स्वामी जी ने जवाब दिया, 'हाँ मैं और श्री रामकृष्ण यह दिखाने के लिए आए हैं कि अनेक और एक का भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न अवस्था में, मन द्वारा अनुभव करना एक ही तत्त्व है।

ईश्वर साकार और निराकार दोनों ही हैं। ईश्वर वह भी है, जिसमें साकार और निराकार दोनों ही समाविष्ट हैं। निवेदिता स्वामी विवेकानन्द ग्रंथमाला की भूमिका में लिखती हैं - 'यही वह वस्तु है, जो हमारे गुरूदेव के जीवन को सर्वोच्च महत्व प्रदान करती हैं, क्योंकि यहाँ वे पूर्व और पश्चिम के ही नहीं भूत और भविष्य के भी संगम विन्दु बन जाते हैं।' अनेक और एक, एक ही तत्व हैं तो उपासना की सभी पद्धतियाँ ही नहीं वरन् कार्य करने की सभी पद्धतियां, प्रयत्न के सभी प्रकार तथा सर्जन की सभी रीतियां ईश्वर से साक्षात्कार के मार्ग हैं। इसलिए व्यावहारिक (Secular) और आध्यात्मिक (Sacred) के बीच में भेद नहीं रहा। परिश्रम करना है प्रभु प्रार्थना, विजय प्राप्त करना है त्याग।

भगिनी निवेदिता के कथनानुसार यह अनुभव स्वामी जी के ज्ञान और भक्ति से भिन्न नहीं पर दोनों ने उन्हें प्रकट करने वाला महान कर्मयोग का उपदेशक बना दिया। उनके अनुसार जीव और शिव के मिलने के लिए कारखाने प्रयोगशाला, खेत, सभी या साधु की कुटिया देवमंदिर के द्वार के समान ही योग्य स्थान हैं।

एक बार स्वामी विवेकानन्द जी ने दक्षिण भारत में वार्तालाप करते समय कहा था, "आदि शंकराचार्य ने वेदांत को पुनः प्रतिष्ठित करके अद्भुत कार्य किया, उन्होंने इस वेदांत को जंगल में एक गुफा में रख दिया था, मेरा जन्म हुआ है - वन के वेदांत को घर-घर ले जाने के लिए।' स्वामीजी ने व्यावहारिक वेदांत (Practical Vedanta) का प्रचार कार्य किया और कहा कि वेदांत को दैनिक जीवन में व्यवहार में लाने से एक मछुआरा बहुत अच्छा मछुआरा बन सकता है, एक विद्यार्थी ज्यादा अच्छा विद्यार्थी बन सकता है; एक शिक्षक अच्छा शिक्षक बन सकता है।

स्वामी विवेकानन्द जी का विशिष्ट अवदान: सेवायोग

एक बार स्वामी विवेकानन्द जी के एक गुरू भाई ने उन्हें कहा, 'तुमने नई बात क्या कही है? वही वेदांत की पुरानी बातों का प्रचार किया है।' स्वामी जी ने उत्तर दिया, 'यह कर्मयोग-सेवायोग मेरा विशिष्ट अवदान है। इससे पहले

किसी ने कर्मयोग का इस प्रकार प्रचार नहीं किया था।' उन्होंने आगे कहा, 'संन्यास धर्म की योग्यता रखने वाले महान व्यक्ति बहुत कम होते हैं। पर इस सेवा के आदर्श का अवलंबन करके साधारण व्यक्ति भी संन्यास धर्म को स्वीकार कर सकेगा।

प्राचीन मान्यता ऐसी है कि कर्म और ज्ञान का समन्वय कभी सम्भव नहीं है, कर्म तो महज चितशुद्धि करने में सहायक है। पर स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि नि:स्वार्थ सेवा करने से अन्य किसी साधना के बिना भी मुक्ति (उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति मिल सकती है। परम्परागत दृष्टिकोण से कर्मयोग ईश्वर के साथ संयोग का परोक्ष साधन है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द जी ने वेदांत को जीवन में व्यवहार में लाकर सेवाकर्म करने का मार्ग बताया है। इसे हमने 'सेवायोग' का नाम दिया है। जो परोक्ष नहीं; प्रत्यक्ष रूप में समाधि की अवस्था ला सके, इतना ही नहीं, समाधि से भी उच्चत्तर आध्यात्मिक अवस्था, जिसे रामकृष्ण देव ने विज्ञान की अवस्था कहा है, वह दे सकता है।

संन्यासी और सेवा योग

स्वामी जी के आदेश से जब उनके शिष्यों ने कनखल-हरिद्वार में रोगियों की सेवा करने का कार्य आरम्भ किया तो संन्यासी सम्प्रदाय में हलचल मच गयी। रामकृष्ण मिशन के साधुओं का अन्य सम्प्रदाय के साधुओं द्वारा वहिष्कार कर दिया गया। वे इन्हें 'भंगी साधु' कहते थे। कारण यह था कि वे रोगियों की सेवा अपने हाथों से करते थे। आज सौ वर्ष के पश्चात् स्थिति वदल गई है। अब धीरे-धीरे अन्य संन्यासी भी सेवा धर्म का महत्त्व समझ रहे हैं!

स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु भाइयों को भी 'सेवायोग' के महत्व के विषय में शंका उत्पन्न हो गई थी। पर बाद में दूसरों की तो क्या बात है, स्वयं स्वामी विवेकानन्द जी के गुरूभाई स्वामी योगानन्द जी ने एक बार यह संशय उनके सामने रखा। बाद में उन्हें अपनी भूल समझ में आ गई। स्वामी विवेकानन्द जी के अन्य गुरूभाई स्वामी तुरीयानन्द जी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अफसोस करने लगे कि उन्होंने स्वामी विवेकानन्द जी के सेवायोग का पालन नहीं किया। १४ जनवरी १९२१ के दिन उन्होंने रामकृष्ण मिशन के वाराणसी अस्पताल में कहा कि यदि कोई व्यक्ति मात्र तीन दिन सही अर्थ में शिवज्ञान से सेवा करे तो उसे मुक्ति मिल जाएगी।

विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ 'श्री रामकृष्ण वचनामृत' के लेखक श्री महेन्द्र नाथ गुप्त 'म' (मास्टर महाशय) भी शुरू में यह मानते थे कि श्री रामकृष्ण देव के उपदेश के अनुसार ध्यान, जप, प्रार्थना वगैरह परम्परागत साधना ही सही है। सेवाकार्य माया के बंधन स्वरूप हैं। वे संन्यासियों के लिए हैं। एक बार श्री माँ सारदा देवी वाराणसी आईं। तब मास्टर महाशय भी वहाँ थे। श्री माँ सारदा देवी रामकृष्ण मिशन का अस्पताल देखने गईं। वहाँ संन्यासियों को रोगियों की सेवा करते देख कर अत्यन्त संतुष्ट हो कर बोलीं, 'श्रीरामकृष्ण देव यहाँ साक्षत विराजे हुए हैं। यही ठीक-ठीक नारायण सेवा है।' श्री मां सारदा देवी ने प्रसन्न होकर दस रूपयों का एक नोट दान स्वरूप दिया था। आज तक वाराणसी सेवाश्रम में वह नोट संभाल कर रखा हुआ है। इसके बाद मास्टर महाशय को भी कहना पड़ा, ' श्री माँ भी जब इस सेवाधर्म को स्वीकार कर रही हैं, तब तो माने बिना छुटकारा नहीं।

स्वामी विवेकानन्द जी का 'सेवायोग' का आह्वान संपूर्ण रूप से ग्रहण करने वाले गुरु-भाइयों में सबसे मुख्य नाम है - स्वामी अखंडानन्द जी महाराज का। रामकृष्ण मिशन का सबसे प्रथम राहत-कार्य उन्होंने ही शुरू किया था- पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले में। इस राहत-कार्य को प्रारम्भ करने के लिए स्वामी अखंडानन्दजी महाराज के जीवन में घटित एक प्रसंग महत्वपूर्ण है।

१८९७ ई० में नवद्वीप धाम का दर्शन करके स्वामी अखंडानन्द जी महाराज मुर्शिदाबाद की ओर जा रहे थे। रास्ते में दादपुर, महुला, नपुकुर गाँवों की बुरी परिस्थिति देखकर उनका हृदय अत्यन्त व्यथित हो गया। तब उनके पास केवल चार आने थे। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक मुस्लिम लड़की जोर-जोर से रो रही है। पूछने पर पता चला कि उसका मिट्टी का बर्तन टूट गया है। घर में कुछ खाने को नहीं है न दूसरा बर्तन है। तो घर के लोग उसे मारेंगे- इस डर से वह रो रही थी। स्वामी अखंडानन्द जी ने दो-दो पैसे का पोआ और मुरमुरा खरीद कर उसे दे दिया। यह देख कर तो वहां भूखे बालक-बालिकाओं की भीड़ लग गई। स्वामी अखंडानन्द जी के पास जो बाकी तीन आने बच्चे थे, उन्होंने उन से मुरमुरा और पोआ लेकर बच्चों में बांट दिया। और आप सच्चे अर्थ में फकीर बन गए। उनके दुख: देखकर उनके अंतरमन में हाहाकार मच गया। वहां से उनके अंतरमन में वहां उनकी सेवा करने की प्रेरणा मिली। उनकी तीर्थयात्रा वहीं पूरी हो गई। वह वहां राहत कार्य में लग गए। बाद में तो उन्होंने अनाथाश्रम खोला और अनेक सेवाकार्य किए।

गुजरात के लोगों के लिए यह जानना सुखद है कि स्वामी अखंडानन्द जी महाराज ने इस महान सेवायज्ञ की प्रेरणा का बीज लगाया था -गुजरात में। भारत के परिभ्रमण के क्रम में एक वर्ष से अधिक समय तक वे जामनगर में ठहरे थे। वहां झंडूभट्ट के सेवाभाव से वह बहुत प्रभावित हुए थे। झंडूभट्ट के बारे में स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था, मैं बहुत से स्थानों पर गया हूँ, बहुत से अच्छे लोगों से मिला हूँ, पर झंडू भट्ट जैसा उदार मनुष्य कहीं नहीं देखा।

आधुनिक मानव को 'सेवायोग के लिए आह्वान

आधुनिक मानव के लिए सरल और सर्वश्रेष्ठ मार्ग है - 'सेवायोग'। २७ अक्तूबर, १८९४ के दिन अमेरिका से स्वामी विवेकानन्द जी ने एक प्रेरणादायी पत्र मं लिखा था। "भगवान को खोजने तुम कहाँ जाओगे?-क्या ये गरीब, दुःखी और दुर्बल भगवान नहीं हैं? पहले उनकी पूजा क्यों नहीं करते? गंगा-तीर पर कुआँ खोदने क्यों जाते हो ?"

अपने प्रिय गुरूभाई स्वामी अखंडानन्द जी महाराज को स्वामी विवेकानन्द जी ने १८९४ में अमेरिका से एक पत्र लिखा था, 'खेतड़ी नगर के गरीब और नीच जातियों में द्वार-द्वार जाओ और उन्हें धर्म का उपदेश दो। उन्हें भूगोल तथा अन्य इसी प्रकार के विषयों की मौखिक शिक्षा दो। आलस्य में बैठकर, राजप्रसाद खाकर और "हे प्रभु रामकृष्ण" कहने से कोई लाभ नहीं हो सकता जब तक कि गरीबों का कुछ कल्याण न करो।....

तुमने पढ़ा है: 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' अपनी माता को ईश्वर समझो, अपने पिता को ईश्वर समझो, परंतु मैं कहता हूँ 'दरिद्र देवो भव, 'मूर्ख देवो भव' गरीब निरक्षर, मूर्खऔर दुःखी इन्हें अपना ईश्वर मानो। इन लोगों की सेवा करना ही परम धर्म समझो।"

ईंग्लैंड की मिस-मार्गरेट नोबल को अपने जीवन को 'सेवा योग' के लिए, अपने जीवन को बलिदान करने के लिए स्वामी विवेकानन्द जी ने अत्यन्त प्रेरणादायी पत्र में ७ जून, १८९६ को लिखा था - 'जगत को प्रकाश कौन देगा? भूतकाल में बलिदान का 'नियम' था, और दुःख है कि युगों तक ऐसा ही रहेगा। संसार के वीरों को और सर्वश्रेष्ठों को 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' अपना बलिदान करना होगा। असीम दया और प्रेम से परिपूर्ण सैकड़ों बुद्धों की (दुनिया के लिए) आवश्यकता है।...... महामना उठो! उठो! संसार दुःखों से जल रहा है। क्या आप सो सकती हैं? मिस नोबल ने यह पुकार सुनी, अपने समस्त जीवन को भारत माता की सेवा के लिए, नारी शिक्षण के काम में निवेदित कर दिया। इसलिए स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें ब्रह्मचर्य की दीक्षा देते समय नाम दिया - 'निवेदिता'।

१८९७ में विदेश से वापस आकर स्वामी विवेकानन्द जी रामेश्वरम् मंदिर के दर्शन के लिए गए थे, वहां उन्होंने जो ऐतिहासिक भाषण दिया था उसमें कहा था, 'सारी उपासनाा का सार है। पवित्र होना और दूसरों की भलाई करना जो शिव को दीन-हीन में, दुर्वल में और रोगियों में देखता है वही वास्तव में शिव की उपासना करता है।'

स्वामी विवेकानन्द जी ने संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषा में अनेक काव्यों की रचना की है। उनका एक अत्यन्त प्रेरणा दायी बंगला काव्य 'सखार प्रति (सखा के प्रति) में उन्होंने शिवज्ञान से जीव सेवा का आवाहन करते हुए कहा है -

प्रेम वत्स! सब स्वार्थ-मलिनता अनलकुण्ड में भस्मीकृत
कर दो, सोचो भिक्षुक-हृदय सदा का ही है सुख वर्जित,
और कृपा के पात्र हुए भी तो क्या फल? तुम बारम्बार
सोचो, दो, न फेर कर लो यदि हो अन्तर में कुछ भी प्यार।

अनतस्तल के तुम अधिकारी, सिन्धु प्रेम का भरा अपार
अन्तर में, 'दो' - जो चाहे, हो विन्दु सिन्धु उसका निःसार।

ब्रह्म और परमाणु'कीट तक, सब भूतों का है आधार
एक प्रेममय, प्रिय, इन सबके चरणों में दो तन-मन वार।

बहु रूपों से खड़े तुम्हारे आगे, और कहाँ है ईश?
व्यर्थ खोज। यह जीव-प्रेम की ही सेवा पाते जगदीश।

आधुनिक मानव धन कमाने, कैरियर बनाने, जीवन व्यवहार के कार्यों में, इतना व्यस्त है, दैनंदिन समस्याओं में इनता उलझा है कि उसके पास प्रार्थना, भजन करने, ध्यान करने, ज्ञान-चर्चा करने का समय ही नहीं है। आधुनिक मानव का मन इतना चंचल है कि ध्यान में मन लगता ही नहीं। इसलिए राजयोग की साधना में वह आगे नहीं बढ़ सकता। आधुनिक मानव पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से संशयवादी बन गया है। ईश्वर में सच्ची श्रद्धा नहीं है, फिर 'भक्तियोग' और साधना कहाँ से होगी? 'ज्ञानयोग' की साधना के लिए अति आवश्यक विवेक-वैराग्य की शक्ति आधुनिक मानव के पास नहीं है। इसलिए स्वामी विवेकानन्द जी ने आधुनिक युग के अनुकूल, सरलतम और श्रेष्ठतम साधन- 'सेवायोग' - कर्मयोग की साधना के लिए आधुनिक मानव का आह्वान किया है।

श्रीमाँ सारदा देवी की प्रासंगिकता

- श्री ओम प्रकाश शर्मा
जयपुर, राजस्थान

श्रीमाँ सारदा देवी के अद्भुत जीवन और संदेश की वर्तमान काल में विशेष प्रासंगिकता है। कुछ समय पूर्व जयपुर में एक रूसी महिला आई थी और उसने कहा कि उसके अनेक देशवासी, जो धार्मिक असहिष्णुता, स्त्रियों पर अत्याचार, मात्र इंद्रिय भोग-सुख और निरी भौतिकतावादिता से ऊब गए हैं तथा आध्यात्मिक उन्नति करने के अभिलाषी हैं, श्रीमाँ के पवित्र, त्यागमय और परोपकारी जीवन से बहुत प्रभावित हुए हैं और वे उनकी विस्तृत जीवनी का रूसी भाषा में अनुवाद भी कर रहे हैं जो मॉस्कों में प्रकाशित होने जा रहा है। यही नहीं, संसार के अनेक शहरों में अमेरिका से ऑस्ट्रेलिया तक - सारदा आश्रम अथवा श्रीमाँ सारदा के आदर्शों पर चलने वाले केन्द्र खुल गए हैं। यह सब इसलिए सम्भव हुआ है कि, जैसा कि ग्रेट वुमन ऑफ इण्डिया तथा अन्य पुस्तकों में कहा गया है, श्रीमाँ सारदा एक स्त्री होते हुए भी 'परम विद्या शक्ति' की अवतार थीं', वे जात-पात, ऊँच-नीच, देश विदेश तथा सब धर्मों से ऊपर उठकर (सिस्टर निवेदिता के शब्दों में) 'समस्त संसार की माँ थीं'। श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव, जिनकी सहधर्मिणी वे थीं, निवेदिता कहती हैं 'उनको इस संसार में श्रेष्ठ वात्सल्य भाव प्रकाशित करने के लिए छोड़ गए थे'। एक बार माँ ने अपनी भतीजी को, जो एक बिल्ली के प्रति कुछ निदर्यता से व्यवहार कर रही थी, ऐसा करने से रोका और कहा कि "मैं उसकी भी माँ हूँ। उसको कष्ट होने पर मुझे भी कष्ट होता है।" फिर शिष्या ने पूछा "माँ, तुम क्या कीड़े-मकोडों की भी माँ हो?" उत्तर मिला : "हाँ, मैं उनकी भी माँ हूँ। मैं उन सब की माताओं के रूप में उन्हें आहार पोषण और संरक्षण देती हूँ।"

एक सौ से अधिक वर्ष पहले जब समस्त देश में कट्टर जाति प्रथा थी, श्रीमाँ सारदा देवी (कुलीन ब्राह्मणी होती हुई भी) हरिजन, डोम, मुसलमान, अंग्रेज, पारसी इत्यादि सब के साथ आत्मीयता का व्यवहार करती थीं और कइयों को मंत्र दीक्षा भी दी। वे एक बार बोली थीं, "जैसे सारदानन्द (श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्य) मेरा (आध्यात्मिक) बेटा है, वैसे ही यह अमजद (एक तिरस्कृत मुसलमान जो धन के अभाव में कभी-कबार छोटी-मोटी चोरी कर लिया करता था किन्तु माँ पर बहुत श्रद्धा रखता था) भी मेरा बेटा है"।

अपनी एक शिष्या को, जो सम्भवतः बहुत दोष-दृष्टि रखती थी, माँ ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में उपदेश दिया - "किसी का दोष मत देखो बेटी। दोष देखने ही हैं तो अपने स्वयं के देखो और उन्हें दूर करने का प्रयास करो। सारे संसार को अपना बनाना सीखो। कोई भी पराया नहीं है।"

श्रीरामकृष्ण परमहसंदेव के साथ श्रीमाँ का विवाह छुटपन में ही हो गया था (परमहंसदेव की आयु उस समय २५ वर्ष की थी और सारदामणि की मात्र ५ वर्ष)। परन्तु उनका आजीवन आपस में कोई शारीरिक सम्बन्ध नहीं था। वास्तव में विवाह के पहले ही यह विदित हो गया था कि यह एक पूर्ण रूपेण 'आध्यात्मिक विवाह' होगा। श्रीरामकृष्ण ने पहले से ही इंगित कर दिया था कि वे एक देवी कन्या हैं और उनके लिए अलग से चुन कर रख दी गई हैं। बाद में यह भी कहा, "वे सरस्वती की अवतार हैं तथा प्राणियों को इस युग में ज्ञान देने हेतु अवतरित हुई हैं।"

जब माताजी १६ वर्ष की हुईं थीं तब श्रीरामकृष्ण (जो उस समय ३६ वर्ष के थे) ने फलहारिणी काली पूजा की शुभ रात्रि (२५ मई १८७२ ई०) में विधिवत् षोडशी पूजा की और उनको "श्रीमाँ" कह कर अपनी सम्पूर्ण तपस्या के फल उनके श्रीचरणों में अर्पित कर दिये। बाद में अपने शिष्यों को उन्होंने बताया कि अब यह जागृत महाशक्ति जगत्-कल्याण हेतु बहुत महत्वपूर्ण कार्य करेगी"।

और किया भी माँ ने वैसा ही। उनके महत्वपूर्ण कार्यों में से दो थे - एक तो स्वामी विवेकानन्द को अमेरिका की महानगरी शिकागो में भाषण देने को जाने के प्रेरित करना और दूसरा, अप्रत्यक्ष रूप से विश्व-प्रसिद्ध रामकृष्ण संघ को स्थापित करवाना।

धन्य हैं माँ और धन्य हैं उनकी आध्यात्मिक सन्तान - स्वामी विवेकानन्द, उनके गुरूभाई तथा उन पर श्रद्धा-विश्वास रखने वाले संसार भर के अनेक प्राणी।

संत-सिपाही थे गुरु गोविंद सिंह

डा. महीप सिंह

गुरु गोविंद सिंह की जन चेतना के नायक वाली भूमिका का उल्लेख कर रहे हैं। डॉ० महीप सिंह

गुरु गोविन्द सिंह का व्यक्तित्व अद्वितीय था। वे दो सौ वर्षों से चली आ रही गुरु-परम्परा के दसवें उत्तराधिकारी थे। वे स्वयं संत थे और अपने असंख्य अनुयायियों के धर्मगुरु भी। परन्तु इसी के साथ वे अपने समय की उभरती हुई जन-चेतना के नायक भी थे। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध उन्होंने अपनी आवाज बुलन्द की। अपने शिष्यों को समय की आवश्यकता के अनुसार नये स्वरूप में ढ़ाला, उनमें अपने स्वत्व और अपने अधिकारों की रक्षा का आत्मविश्वास उत्पन्न किया, संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति से टकराने का उनमें साहस उत्पन्न किया। इसीलिए उन्हें संत-सिपाही कहा जाता है। गुरु गोविन्द सिंह का जन्म पौष सुदी सप्तमी सम्वत् १७२३ विक्रमी अथवा २० दिसम्बर सन् १६६६ में पटना नगर में हुआ था। उनका जीवन जितनी विविधता और विशालता से भरा हुआ है, उतनी ही विविधता और विशालता उनके जन्म-स्थान, कार्य-क्षेत्र और देहावसान में भी दिखायी देती है। जन्म-स्थान सुदूर-पूर्व पटना में, कार्य क्षेत्र पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में और देहत्याग महाराष्ट्र के नांदेड़ नगर में। उनके जीवन कार्यों की भांति मानो ईश्वर ने उनकी जीवनावधि को भी भारत की एकता का प्रतीक बना दिया था।

गुरु गोविन्द सिंह को मानवता का मसीहा कहा जा सकता है। मानवीयता की पहली शर्त है, मनुष्य की गरिमा की रक्षा करना। मनुष्य को छोटा बनाकर कोई धर्म, कोई दर्शन, कोई विचार बड़ा नहीं बन सकता। मनुष्य का कल्याण, उसका सर्वपक्षीय विकास और उस विकास के लिए सामाजिक जीवन में अनुकूल वातावरण का निर्माण उस गरिमा को स्थिर रखने, पुष्ट करने और उसकी अभिवृद्धि के सहायक तत्व हैं। गुरु गोविंद सिंह ने अनुभव किया था कि मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए मानवीय समता के विचार को कार्य रूप में बदलना चाहिए। इस विचार को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने सन् १६९९ में बैसाखी के दिन आनन्दपुर साहिब में एक विशाल आयोजन किया। उन्होंने लोगों से कहा कि मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए मुझे सिर चाहिए।

शीश-दान की परीक्षा में जो पांच आत्मोत्सर्गी उत्तीर्ण हुए उनके नाम थे: दयाराम, धर्मदास, मोहकम चंद, हिम्मतराय और साहब चंद। ये सभी अलग-अलग स्थानों और अलग-अलग जातियों के थे। दयाराम लाहौर का खत्री था, धर्मदास दिल्ली के पास हस्तिनापुर का जाट, मोहकम चंद द्वारका (गुजरात) का धोबी और हिम्मत राय जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) का कहार था। इसी तरह साहब चंद बोदर (कर्नाटक) का नाई था। गुरु गोविन्द सिंह ने इन्हें लोहे के कढ़ाव में, लौह अस्त्रों से स्पन्दित और गुरुवाणी के पाठ से मंत्रित कर अमृत पिलाया। उसमें गुरु-पत्नी ने थोड़े से बताशे डाल दिये। जिसका मतलब था कि ये सभी लौहपुरुष तो हों, साथ ही मिष्ट भाषी भी हों।

इस अमृत को पीने के बाद ये प्रादेशिक विभिन्नता और जातिगत असमानता से ऊपर उठकर नयी मानवता की समतल भूमि पर आकर दया सिंह, धर्म सिंह, मोहकम सिंह, हिम्मत सिंह और साहब सिंह में रूपांतरित होकर, 'पंज प्यारे' बन गये। इस प्रक्रिया से गुरु गोविन्द सिंह ने अपने आपको भी अलग नहीं रखा। 'पंज प्यारों' से उन्होंने स्वयं अमृत ग्रहण किया और गोविंद राय से गोविन्द सिंह बन गए। उनके पंच प्यारों में चार ऐसे थे, जिन्हें इस देश की रूढ़ समाज व्यवस्था 'शूद्र' कहकर नीची श्रेणी का व्यक्ति घोषित कर रही थी। गुरु गोविन्द सिंह की खुली हुई बाँहों में वे सभी सिमट गये। उनके साथियों, सम्बन्धियों और अनुयायियों में ऊंची समझी जानेवाली जातियों के लोग भी थे। उन्होंने आपत्ति की कि गुरु जी, आप यह क्या कर रहे हैं? नीच जाति के लोगों को आप हमारे बराबर का स्थान दे रहे हैं।"

इस पर उन्होंने बड़ी विनम्रता से कहा, "जिन्हें आप नीच कह रहे हैं, मैंने सभी युद्ध इन्हीं की कृपा से जीते हैं, मेरे सभी संकट इन्हीं की कृपा से दूर होते हैं। इन्हीं की कृपा से मेरा लुटा हुआ घर फिर से भर जाता है। मेरी विद्या इन्हीं की कृपा का प्रसाद है। मेरे शत्रु इन्हीं की कृपा से पराजित

होते हैं। मैं जो कुछ भी हूँ, इन्हीं की कृपा से हूँ। नहीं तो मेरे जैसे करोड़ों इस संसार में हैं- कौन पूछता है उन्हें? इस क्रम में आगे कहते हैं: समाज जिन्हें छोटा समझता है, जिनकी उपेक्षा करता है, जिन पर अन्याय और अत्याचार होता है, मैं उनका सेवक हूँ। मेरा तन, मन, धन और घर सब इन्हीं का है।

सेव करी इनही की भावत,
और की सेव सुहात न जी को।
दान दियो इनहीं को भलो,
अरु आन को दान न लागत नीको।
आगै फले इनही को दियो।
जग में जसु और दियो सब फीको।
मो गृह, मो तन से सिरलौं।
धन है सब ही इनही को।

इस देश की आजादी के लिए गुरु गोविन्द सिंह ने बहुत से युद्ध किये थे। आदर्शों की रक्षा और मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए अपनों से भी और परायों से भी उन्हें अनेक स्तरों पर संघर्ष करना पड़ा। परन्तु इन सभी संघर्षों और झंझावातों के मध्य एक क्षण के लिए भी उन्होंने अपनी मूल्य-दृष्टि को खंडित नहीं होने दिया। व्यवहार के स्तर पर पीर बुद्धशाह जैसे मुसलमान फकीर अपने पुत्रों और अनुयायियों सहित उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर अन्याय के विरुद्ध लड़े थे। सिद्धांत के स्तर पर वे लगातार इस बात का आग्रह करते रहे कि इस दृश्यमान संसार के विभिन्न विभेदों के मध्य एक अभेद और अखंड शक्ति का निवास है। सब कुछ उसी से उत्पन्न होकर उसी में समा जाता है। अपनी एक कविता में वे इस भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं:

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे,
निआरे निआरे हुई के फेरि आग में मिलाहिंगे।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत हैं,
धूर के कनूगा फेर, धूर ही समाहिंगे।
जैसे एक नद ते तरंग कोट उपजत है,
पानि के तरंग सबै पानि ही कहाहिंगे।।
तैसे विस्व रूप से अभूत भूत प्रकट होइ,
ताही ते उपज सबै ताही में समाहिंगे।।

यदि यह मानवीय सृष्टि उस एक विश्व रूप से ही उत्पन्न हुई है तो फिर भेदभाव कैसा? संसार में मानवीय भेदभाव को कभी वर्ण, कभी देश, कभी सम्पन्नता, विपन्नता आदि अनेक आधारों पर पाला-पोसा जाता रहा है। परन्तु ये सभी आधार गलत हैं। सच्चाई तो यह है कि मनुष्य एक ही है। विभिन्न प्रभावों के कारण कुछ लोग मंदिरों में जाते हैं, कुछ मस्जिदों में।

कुछ लोग एक प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं, कुछ दूसरे प्रकार का। गुरु गोविन्द सिंह कहते हैं कि दिखने वाला सम्पूर्ण मानवीय अंतर जलवायु, परिवेश और वातावरण की उपज है। यह अंतर मूलभूत नहीं हैं। मुंडा संन्यासी होने या योगी बनने, ब्रह्मचारी या यति बनने से, हिन्दू या मुसलमान होने से मानवीय स्वरूप तो नहीं बदल जाता। उन्होंने कहा था कि मैं इन सभी भेदों के रहते हुए भी मनुष्य मात्र को एक जैसा मानता हूँ। मैं मानता हूँ कि सभी मनुष्यों में एक ही ज्योति का निवास है। इसलिए मैं भूलकर भी मनुष्य और मनुष्य के किसी भेद को स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ....

कोऊ भयो मुंडिया संन्यासी कोई जोगी भयो,
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जति अनुमान बो?
हिन्दू तुरक कोऊ हाफिजी इमाम शाफी,
मानस की जात सबै एकै पहचानबो।।
करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरों न भेद कोई मूल भ्रम मानबो।।
एक ही कह सेव, सभ ही को गुरुदेव एक,
एक ही स्वरूप सबै एकै जोत जानबो।

गुरु गोविन्द सिंह का सम्पूर्ण जीवन देशभक्ति और मानव मूल्यों की रक्षा का जीवन था। इसके लिए वे जीवन भर संघर्ष करते रहे। इन्हीं मूल्यों की रक्षा के लिए उनके पिता गुरु तेग बहादुर जी ने दिल्ली के चाँदनी चौक में अपना बलिदान दिया। इन्हीं मूल्यों की रक्षा में उनके चारों पुत्र शहीद हो गये। इन्हीं मूल्यों के लिए अंत में उन्होंने अपने प्राण भी न्योछावर कर दिए। गुरु गोविन्द सिंह का साहित्य उनके जीवन-मूल्यों से ही अनुप्राणित साहित्य है। उन्होंने सदा यह कामना की कि वे सदा शुभ कर्म करने की प्रेरणा ही अपने अनुयायियों को दें। उन्होंने एक ही सीख दी कि व्यक्ति को गौरव और स्वाभिमान से जीना चाहिए और उसी स्वाभिमान के साथ जीवन के युद्ध में संघर्ष करते हुए मरना चाहिए। □

मानसिक तनाव के समाधान में उच्चतर मूल्यों की भूमिका

- स्वामी गोकुलानन्द

जो चर्चा अब तक हो चुकी है उसे ध्यान में रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि मानसिक तनाव के मुख्य कारणों में से एक जिसका अभिनिर्धारण हम कर सकते हैं वह हमारे भीतर विद्यमान विभिन्न आंतरिक प्रवृत्तियाँ हैं। उदाहरणार्थ - जहाँ तक धार्मिक आदर्श का संदर्भ है यह हमारी मूल प्रारम्भिक अंतः प्रेरणा है। इसके अलावा देह मन के अनेकों आवेग, जैविकीय आवेग तथा आदिकालिक अपरिष्कृत लालसाएँ एवं ऐसी और प्रवृत्तियाँ है। यहाँ तक कि उच्च जीवन मूल्य भी तनाव का कारण बन सकते हैं। धार्मिक झुकाव की ओर प्रवृत्त पुरुष जो कि उच्च जीवन के पूर्णत्व की अनुभूति के लिए आतुर है, उन्हें भौतिक सीमाएँ दिव्यानन्द उपलब्धि में बाधक हो जाती हैं। ये भी तनाव उत्पन्न कर सकती है।

इस धारणा की कथा कठ उपनिषद में स्पष्टतः प्रतिज्ञापित की गई है। जहाँ यमराज नचिकेता को उपदेश देते हुए कहते हैं कि मानव प्राणियों की सृष्टि इस प्रकार हुई है कि वे बाह्य सांसारिक सुखों का भोग किए बिना नहीं रह सकते। आंतरिक बोध के विरले क्षणों में ही हमें अपने आध्यात्मिक स्वरूप की चिनगारी के प्रकाश का आभास होता है। फिर भी जैविक आवेग हमें भौतिक स्तर की सांसारिक वस्तुओं की ओर खींच लेते हैं। परिणामस्वरूप ऐसी परिस्थिति हो जाती है जहाँ व्यक्ति को अपने अंदर पूर्णत्व का आभास तो होता है और वह उसे प्राप्त भी करना चाहता है किन्तु बलवान वासनाएँ बाधक बन जाती हैं। स्पष्टतया इस द्वन्द्वात्मक खिंचाव का परिणाम तनाव होगा। अतः एक ओर दिव्य आवेग और दूसरी ओर जैविक आवेग इन दोनों की परस्पर रस्साकसी कुछ कम तनाव उत्पन्न नहीं करती।

इस संबंध में मनोचिकित्सा का सूत्रपात करने वाले पाश्चात्य जगत के मनोविश्लेषक एवं छात्रों में मनोविज्ञान विषय के जाने-माने सिगमंड फ्रायड के विचारों की पुनरावृत्ति उपयुक्त होगी। फ्रायड के अनुसार मानव की मूलभूत कामनाएँ ही मन में द्वन्द्व उत्पन्न करती हैं।

प्रारम्भ में फ्रायड ने आदिकाल से व्याप्त इस कामना को काम वासना की संज्ञा दी लेकिन बाद में इसे सुख-सिद्धान्त सुखमय जीवन यापन के रूप में प्रतिपादित किया। यह सिद्धान्त इस तथ्य को दर्शाता है कि हम सबके जीवन में अधिकतम सुख-प्राप्ति की कामना विद्यमान है।

इस प्रकार के सुख संदर्भ में मुझे चार्वाक दर्शन का भी स्मरण हो रहा है। इसके अनुसार हमें खाओ-पिओ, मौज उड़ाओ लोकोक्ति का अनुगमन करना होगा, यानी सुख संकल्पना। चार्वाक ने ईश्वरीय अस्तित्व, आत्मा व अध्यात्म संबंधी अंन्य धारणाओं को नकारा है। उनका आग्रह इस बिन्दु पर विशेष है। चूँकि मानव जीवन मिला है तो यह अधिक उपयुक्त होगा कि इन्द्रिय सुख व भौतिक सुख-सुविधाओं का भोग अधिकाधिक किया जाए। किन्तु उच्चतर मूल्यों के प्रति सचेत व्यक्ति में तीव्र शारीरिक सुखों की व्यग्रता को उचित अभिव्यक्ति नहीं मिलती और इससे उत्पन्न द्वन्द्व अत्यन्त तनावपूर्ण होता है। ऐसे व्यक्ति दुर्लभ हैं जो कि इन्द्रिय सुख की कामना का परिष्करण (sublimation) करने में समर्थ हों। वास्तव में इस बात पर चर्चा हम बाद में करेंगे। फिलहाल हमारा विचार-विमर्श मानव की भौतिक माँगों के संदर्भ तक ही सीमित रहेगा। इन्द्रिय सुख की पूर्ति की प्रक्रिया में उच्चतर मूल्यों के अवरोधन के अतिरिक्त एक अवयव और भी है जिसे फ्रायड ने परमअहं (Super-Ego) का नाम दिया है।

परमअहं सुख भोग की वृत्ति पर प्रभावशाली अंकुश रखता है। फलस्वरूप मन शरीर की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति पर नियंत्रण करता है। यहाँ पर अच्छा होगा कि हम स्पष्टतया स्वीकार करें कि मानव प्राणी शक्तिशाली शारीरिक कामनाओं का विषय बन जाता है और वह हर कीमत पर तृप्ति चाहता है। उदाहरणार्थ कॉलेज जाने वाला लड़का या लड़की केबल टीवी पर एक चटकीली फिल्म का आनन्द ले रहे हैं तभी उनके माता-पिता घर लौट आते हैं। उनके लड़के/लड़की ऐसी फिलम देखें यह उन्हें पसंद नहीं है। वे अगाध धार्मिक हैं। लड़के/लड़की डर जाते हैं क्योंकि वे इस

सेंसर से अवगत हैं और वे फिल्म देखना बंद कर देते हैं यद्यपि वे देखने के लिए व्याकुल हैं। यह भी संभव है कि लड़का/लड़की सुखानुभूति के लिए अपने आप पर नियंत्रण रखते हों। यदि एक युवा ने जीवन में उच्चतर मूल्यों का विकास किया है अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में दीक्षित हो गया है - तो वह ऐसी घटिया फिल्में देखना जिनसे पतन होता हो, पसंद नहीं करता। किन्तु यह जानते हुए भी कि इनसे बचना है अकेला होने पर वह अपनी इच्छा को दबा नहीं पाता है। तनाव और अंतर्द्वन्द्व के कारण उन्हें अकथनीय पीड़ा होती है।

अतः आध्यात्मिक प्रेरणा तनाव बढ़ाने में स्वतः सक्षम है। शास्त्र कहते हैं ऐसा मत करो, वैसा मत करो। वाणी विचार एवं कर्तव्य कर्मों के निष्पादन में शुचिता लाने के लिए ये निर्देश हमें बाध्य करते हैं। इन पर विश्वास व्यक्त करने के उपरान्त भी यदि हम इनका सही क्रियान्वयन नहीं कर पाते तो निश्चित रूप से हम अपने आपको अस्त-व्यस्त पाते हैं। यह बोझ परम अहं है जो मन की इच्छाओं पर नियंत्रण रखता है तथा देह सुख सिद्धान्त की अभिव्यक्ति पर अंकुश लगाता है। किन्तु इस सिद्धान्त को उपयुक्त अभिव्यक्ति नहीं मिलती। उसे दबाया जाता है या उसका दमन होता है तो यह कुंठा अवचेतन स्तर पर प्रवेश कर पड़ी रहती है और तनाव पैदा करती रहती है। इसलिए यह कहा जाता हे कि धार्मिक आदर्श, व्यक्ति को सुख भोग के मार्ग का आरोहण करने से रोकता है। ऐसा व्यक्ति अपरोख रूप से अपराध की भावना से भयभीत हो अपनी सुख भोगने की प्रवृत्ति की पूर्ति नहीं कर पाता। उसका अंतःकरण उसे कचोटता रहता है जो मानसिक तनाव का कारण बन जाता है! इसके अलावा लोकनिंदा से भी वह भयाग्रस्त रहता है। कुल मिलाकर ऐसा प्रतीत होता है कि जो लोग उच्चतर मूल्यों के प्रति उदासीन रहते हैं वे सुख भोग में बेफिक्र होकर अपना समय व्यतीत करते है।

मानसिक तनाव का एक अन्य कारण भी हे और वह है धर्म के बारे में मिथ्या धारणाएँ जो व्यापक रूप से लोगों में व्याप्त हैं। यदि धर्म का अनुसरण सही रूप में किया जाए तो मानसिक तनाव के लिए कोई कारण ही शेष नहीं रहेगा। पाश्चात्य मनोविज्ञान-वेत्ताओं की धारणा इस तथ्य की नींव पर खड़ी हे। भौतिक कामना सुख भोग की प्रवृत्ति मानव की प्रमुख कामना है। हमारा कहना है कि दिव्यत्व भी हमारी बुनियादी मांग है। हमारे ऋषियों ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अपने व्यक्तिगत अनुभव एवं अंतरावलोकन के माध्यम से किया, जिस प्रकार मनोविज्ञान-वेत्ताओं ने अपने अनुभवों के आधार पर सिद्धान्त का निरूपण किया है। इसके विपरीत ऋषियों की मान्यता है कि हम अमरत्व की उत्तराधिकारी संतानें हैं। हमारे लिए क्या यह उपयुक्त नहीं होगा कि भौतिक जीवन की परिपाटी के संकुचित दायरे में सीमित न होकर अपनी दिव्य विरासत के उत्तराधिकारी बनें। धार्मिक शिक्षाओं का सार समझने से पूर्व हमें यह भली-भाँति ज्ञात होना चाहिए कि धर्म हमें इच्छाओं का दमन करना नहीं सिखाता और जो धर्म इच्छाओं को दमन करने की शिक्षा प्रदान करता है वह सच्चा धर्म ही नहीं है। इस बात को समझने के लिए मैं आपके समक्ष एक घटना वृत्तान्त सुनाना चाहूँगा। इसी प्रकार की समस्या हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्दजी) ने भगवान श्रीरामकृष्णदेव के सामने प्रस्तुत की थी। श्री हरि महाराज ने बाद में पूर्णरूपेण मठवासी संन्यासी का जीवन व्यतीत किया। श्री हरि महाराज उन दिनों दक्षिणेश्वर काली मंदिर में श्रीरामकृष्ण के निकट सत्संग करने आते रहते थे। वे भारी मानसिक तनाव की स्थिति में थे। इस संन्यासी का एक महान गुण यह था वि वे स्पष्टवादी थे भेदभाव रहित थें। श्री रामकृष्ण का शिष्यत्व ग्रहण करने के उपरान्त भी वे मानसिक तनाव से मुक्त नहीं हुए थे। देह सुख की वृत्ति का वेग संताता रहता था। उन्होंने खुलकर अपनी समस्या प्रस्तुत करते हुए पूछा कि मैं कामुकता से किस प्रकार मुक्त हो सकूँगा? अपनी भावनाओं को बिना छिपाए उन्होंने अपनी व्यथा को उजागर कर डाला। वे परमात्मा प्राप्ति के लक्ष्य से प्रेरित थे लेकिन मानसिक अन्तर्द्वन्द्व उन्हें प्रगतिपथ से जुदा कर रहा था। कामुकता के विचार उनके मस्तिष्क को प्रताड़ित कर रहे थे और देह सुख उनकी आत्मा पर हावी हो रहा था। और वे किंकर्तव्य विमूढ़ की भाँति यह नहीं समझ पा रहे थे कि वे क्या करें क्या न करें?

श्रीरामकृष्ण ने इनका प्रश्न सुना और उत्तर दिया, 'यह स्वतः नहीं जाती। बेहतर रहेगा इसकी दिशा बदल दो,

अतः दिशा बदलो।' विस्तार से उन्होंने पुनः समझाया कि कामना ईश्वर उपलब्धि पूर्व तक विद्यमान रहती है। मुमुक्षु को चाहिए इसका एकान्तर मार्ग खोजे, कहना होगा पुनः चकित करें।

इस प्रसंग में हमें स्वामी विरजानन्दजी का आदेश स्मरण हो उठता है। वे रामकृष्ण संघ के छठे अध्यक्ष थे। उन्हें आध्यात्मिक रहस्यों का ज्ञान था तथा उन्हें भगवद्दर्शन की उपलब्धि हुई थी। अपनी पुस्तक 'परमार्थ प्रसंग' में उन्होंने उल्लेख किया है 'काम अथवा कामुकता के समान भयानक तथा अजेय शत्रु और नहीं है।'

कामुकता अपरिहार्य है, इसे पूर्णरूपेण मिटा पाना असम्भव है। ईश्वर की ओर इसका मुख कर देना यही उपचार है। कामोत्तेजना होने पर हमें ईश्वर के साथ सामीप्य स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि क्रोध आए तो ईश्वर पर आक्रोश करो और कहो, 'तुम अपने आप को प्रकट क्यों नहीं करते हो?

इस विषय में श्रीरामकृष्ण हमारे लिए मूर्त आदर्श स्वरूप है। वे माँ काली से कहा करते थे, 'यदि तुम निष्प्राण पत्थर हो तो तुम्हारी पूजा करने का क्या अर्थ और यदि तुम जीवंत सत्यस्वरूपा हो तो अपने आपको प्रकट करो।' हमें इनके दृष्टांत का अनुकरण करते हुए आक्रोश करना चाहिए। यह हमारी कामुकता को भिन्न दिशा देने के सदृश है। इसे जड़मूल से मिटाना सम्भव नहीं है।

मनोविज्ञानवेत्ता भी हमें हमारी इच्छाओं का दमन करने का परामर्श नहीं देते। यदि हम इच्छाओं का दमन करते हैं तो फलस्वरूप असहनीय तनाव-पीड़ा होती है। हमारा व्यवहार विक्षिप्त हो सकता है, हम कई मनोग्रन्थियों में उलझेंगे। लेकिन फ्राइड विचारधारा की मूल अवधारणा भी गलत है कि धर्म वासनाओं को दमन करने का उपदेश देता है और इसके परिणाम स्वरूप मानसिक तनाव एवं द्वन्द्व पैदा होता है। यह मान्यता सही नहीं है। यह मान्यता तो हमारे संतों एवं आत्मवेत्ताओं के प्रति घोर अन्याय है। हमारे योगियों और आत्म-द्रष्टाओं ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि दैहिक मूल-प्रवृत्तियाँ शक्तिशाली अवश्य हैं, लेकिन उनका उदात्तिकरण संभव है और उनकी सन्तुष्टि की गुंजाइश भी है। सूक्ष्म दृष्टि से यदि हम धार्मिक ग्रन्थों का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि हमारे ऋषियों ने सब स्वभावों के लिए धार्मिक ग्रन्थों में प्रावधान किये है। उन्होंने चतुवर्गीय कर्तव्यों को जिन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के नाम से जाना जाता है मानव के लिए आवश्यक माना है। इनमें पहला सिद्धान्त धर्म में आस्था है अर्थात् सदाचारपूर्ण जीवन यापन करना। इसे जीवन स्तम्भ मानकर हमें ईमानदारी और न्यायपूर्ण ढंग से अर्थोपार्जन करना चाहिए। उन्होंने काम को वर्जित नहीं माना, काम वासना की पूर्ति को वैध माना हैं लेकिन कामुकता में डूबे रहना अथवा पशुवत् अनियंतित्र व्यवहार करना अथवा सुख-भोग को जीवन का लक्ष्य स्वीकार करने से अवश्य मना किया है। काम व इच्छा पूर्ति में में स्वनियंत्रण वांछनीय है यदि इसमें अनुशासन बरता जाए तो इस अवस्था को पार कर के मोक्ष प्राप्ति लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा।

उपर्युक्त उल्लेख से यह स्पष्ट है कि आधुनिक मनोविज्ञान वेत्ताओं की तरह प्राचीन ऋषियों ने काम इच्छा पूर्ति को जीवन में स्वीकार किया था लेकिन उन्होंने इसे साधन माना, साध्य नहीं अर्थात् उन्होंने निम्नस्तर की मूलभूति प्रवृत्तियों को उदात्त करने पर जोर दिया है उनके दमन पर नहीं। इस प्रकार हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि काम वासना तथा अन्य जीवधारी आन्तरिक प्रवृत्तियों के अतिरिक्त हमारे जीवन का एक दिव्य आयाम भी है। यदि हमारा जीवन प्रथम पक्ष के इर्द-गिर्द घूमने लगे तो हम पशुओं से उच्चतर नहीं होंगे, किन्तु यदि हमने अन्तर्निहित दिव्य चिंगारी को अस्तित्ववान बना लिया तो हम पशु स्तर से उठकर अपने अस्तित्व को दिव्य स्तर तक उठा सकेंगे। इसलिए फ्रायड व उसके अनुयाइयों की विचारधारा के विपरीत हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि धर्म का सही अर्थ व रूप तनाव पैदा नहीं करता बलिक तनाव को समाप्त करने का साधन है। हाँ कामनाओं के दमन करने से कामनाएँ नहीं मिटती। वे अवचेतन गहराई में प्रचछन्न रहकर शारीरिक रोग जैसे पेपटिक अल्सर, पेल्पीटेशन व अन्य रोगों को उकसाती रहती हैं।

अतः इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि धर्म को सही रूप में समझा जाए तो यह तनाव को जड़ से मिटा सकता है लेकिन इसके लिए दिनचर्या में अभ्यासरत रहना

आवश्यक है। सच्चा धर्म हमें सिखाता है कि यदि अनित्य धरातल पर ही अपना अस्तित्व स्थाई रखना चाहते हैं तो हम मानसिक तनाव पर काबू नहीं पा सकेंगे। इसके विपरीत धर्म हमें यह भी शिक्षा देता हे कि इन्द्रिय सुख जीवन में सबकुछ और उसका लक्ष्य नहीं है। किसी मात्रा में भौतिक सुख-सुविधा जीवन के लिए आवश्यक है। लेकिन हमें इसके ऊपर उठना होगा, इन्द्रिय सुख जीवन का चरम लक्ष्य नहीं स्वीकारा जा सकता। सारांश यह है कि हमें निम्न श्रेणी की कामनाओं को अपने वश में रखना चाहिए। जिससे हम अपनी अन्तर्निहित दिव्यता को प्राप्त कर सकें। पशुतव के स्तर से कहीं बढ़कर दिव्यत्व जीवन का नया श्रेष्ठ आयाम है जो केवल स्वपरिश्रम से ही प्राप्य है। शारीरिक सुखों का भोग ही यदि जीवन लक्ष्य बन जाए तो उसकी परिणति मानसिक तनाव में अवश्य होगी। कारण स्पष्ट है। क्योंकि इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति अधिक सुख-भोग की मानसिक वृत्ति को जागृत करती है जिसका परिणाम अधिकाधिक मानसिक द्वन्द्व व तनाव होता है। अगर धर्म की मान्यता गलत रूप में ग्राह्य हो जाती है तो परिणाम तनाव ही होगा। कुछ अविवेकि धर्म प्रचारक मनुष्य में अपूर्णता, दोष एवं पाप वृत्ति को भ्रान्तिपूर्ण महत्व देते हैं। वे इनका अतिरंजित विधि अपना कर अपना पक्ष रखते हैं जिस पर यदि हम चलें तो मानसिक गड़बड़ी पैदा होना अवश्यंभावी है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि धर्म प्रचार योग्य धर्म प्रचारक द्वारा ही हो तथा धर्म का सकारात्मक रूप ही प्रस्तुत किया जाए।

इस संवंध में श्रीरामकृष्णदेव ने जो कुछ कहा वह चिन्तर्नाय है। उन्होंने कहा 'क्या तुम मुझे एक बात बता सकोगे? तुम पाप का राग इतना क्यों अलापते हो? 'मैं पापी हूँ' सौ बार दुहराने से व्यक्ति निश्चयपूर्वक पापी बन जाता है। उसमें इतना आत्मविश्वास होना चाहिए कि वह दृढ़ता से कह सके, "मैंने ईश्वर का नाम लिया है, भला मैं पापी' यह केसे हो सकता है?"

ऐसे ही शब्द स्वामी विवेकानन्द के भी हैं। एक संदर्भ में उन्होंने कहा, 'संसार में जो हो रहा है उसे सांसारिक दुष्टता न कहो। इस प्रकार के शिक्षण से संसार कमजोर होता जाएगा। बाल्यकाल से ही लोगों को सिखाया गया है वे पापी हैं, निर्बल हैंफ मनुष्यों को सिखाओं की वे दिव्य हैं, अमृत की संतान हैं। जो लोग- अति निर्बल दिखाई देते हैं उनके मस्तक में भी सकारातमक शक्तिशाली एवं सहायक विचार बचपन से भरने की जरूरत है। जीवन में ऐसे दृढ़ विचारों को आने दो न कि वे जो निर्वल और कमजोर बनाते हों।'

श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द जैसे जगद्गुरूओं के महत्वपूर्ण शब्दों से यह प्रमाणित होता है कि धर्म को यदि यथार्थ रूप से ग्रहण किया जाए तो यह तनाव उत्पन्न नहीं करता बल्कि तनाव से मुक्त करता है। जीवन के नकारात्मक स्वरूप को व्यक्त करने के स्थान पर उसके सकारात्मक पक्ष को उजागर करना होगा। फिर से स्वामी विवेकानन्द के शब्दों पर ध्यान दें 'कौन कहता कि हम जन्म से पापी हैं? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है।' इसका आशय यह है कि यदि हम में पाप वृत्ति है तो हमें उससे मनोग्रस्त नहीं होना चाहिए। हमें इस तथ्य को आत्मसात करना है कि यदि बुराई हे तो हमारे अन्दर दिव्यता भी विद्यमान है। बुराई को निष्क्रिय करने के लिए इस दिव्य स्वरूप को प्रत्यक्ष करने की आवश्यकता है। अतः स्पष्ट है कि धर्म के परम सत्य, तनाव एवं भार पैदा नहीं करते और न ही पाप वृत्ति को बढ़ावा देते हैं। इसके विपरीत जीवन में सामंजस्य एवं संतुलन बनाए रखने में वे आशा, प्रेरणा व उत्साह का संचार करते रहते हैं।

मानसिक तनाव के कारणों में संस्कारों की भूमिका की चर्चा भी आवश्यक है। हिन्दू विचारकों जैसे – पतंजलि एवं स्वामी विवेकानन्द के अनुसार पूर्वजन्मों के संचित संस्कार तो हम में होते ही हैं। ये हमारे अवचेतन मन में संग्रहीत हैं और इस जीवन के कर्म जनित संस्कार उन संग्रहित संस्कारों में जुड़ जाते हैं। संस्कार शुभ और अशुभ दोनों होते हैं, इसमें से प्रत्येक व्यक्ति इन शुभ-अशुभ संस्कारों की गठरी हैं। यदि हमारा झुकाव निन्दनीय कर्मों की ओर है तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पूर्वजन्म के व इस जन्म के अर्जित संस्कार अशुभ हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात हमारे विचारकों की यह धारणा हे कि हम कर्म करने के लिए स्वतंत्र हैं। अतः संस्कारों के अर्जन के साथ-साथ बुरे संस्कारों का विसर्जन प्रारंभ हो जाता है। दूसरे शब्दों में स्वतंत्र संकल्प शक्ति जो कि मनुष्य मात्र में

है, उसके द्वारा हम अपना सुधार स्वयं करने की क्षमता रखते हैं। दार्शनिक हिन्दू विचारक निराशावादी नहीं है। वह प्रगतिशील है, गतिवान है और मानवता का आशाजनक संदेशवाहक है। अन्य विचारणीय बातें- वातावरण है। हम सौहार्दपूर्ण वातावरण में जी रहे हैं लेकिन एकाएक हमारे सद्प्रयत्नों के उपरान्त भी हम त्याज्य भावनाओं के आवेश में बह जाते हैं। अशुभ संस्कारों के कारण ऐसा हो जाता है। ऐसा मानकर हम स्व प्रयत्नों की सहायता से ऐसी स्थिति पर काबू पा सकते हैं। यह उक्ति-मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है - उपयुक्त ही है। वर्तमान स्थिति को अंगीकार करने के साथ-साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मेरे अन्तःस्थल में दिव्य ज्योति भी है। मैं इस दिव्य ज्योतिर्मय संकल्प शक्ति को बटोर सकता हूँ, बुरे संस्कारों को धो सकता हूँ। उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकता हूँ।

फ्रायड की विचारधारा के अनुसार तो मानसिक तनाव बड़ी कठिनाई से ही दूर हो सकता है। इनके मुताबिक जब तक अवचेतन में दबी हुई मूलभूत कामना तथा परमअहं (Super Ego) के तत्त्वावधान में स्वेच्छिक आत्मनियंत्रण के बीच समाधान न हो जाए तब तक मानसिक तनाव पर काबू पाना मुश्किल है। लेकिन हमारी मान्यता यह है कि धार्मिक दृष्टिकोण के विकास से इस तनाव को निर्मूल किया जा सकता है।

किन्तु फ्रायडवादी मनोविज्ञान के संदर्भ में वर्तमान अनुचिन्तन द्वारा जो विचार प्रसारित हुआ है यह मानता है कि पराअहं द्वारा लगाए गए अवगुंठन हटाने के बाद भी मानसिक तनाव बना ही रहता है। अतः उनके कथनानुसार मानिसक अन्तर्द्वन्द्व पूर्णरूप से समाप्त नहीं हो सकता, उदाहरणार्थ यदि कोई टी. वी. अथवा वी. सी. आर. लेकर वन में मनोविनोद के चिल चला जाए तो उसे वहाँ यह अनुभूति तो होगी ही कि वह पूर्णरूपेण स्वतंत्र नहीं है। उसे भीतर ही भीतर बंधन की अनुभूति होती है। उसे अहसास होता है कि वह अन्दर से चरमरा रहा है और अपने आपका विनाश कर रहा है। यदि वह पशुवत नहीं है तो उसे उसकी आंतरिक वेदना कचोटती रहेगी। इस उदाहरण से यह प्रकट हो जाता है कि संयम बाह्य नहीं होता, मानव विवेक ही सबसे महान संयम है। एक बड़े स्वामी ने कहा है, 'आत्मा की आवाज ईश्वर की वाणी है!' चाहे हमारे ऊपर बाह्य नियंत्रण न भी हो तो भी हमारा मन अथवा हमारा अंतःकरण हमें स्पष्ट निर्णय सुना देता है कि सही क्या है और गलत क्या है।

मनोवृत्ति अथवा निम्न श्रेणी के इन्द्रिय सुखों कामना पूर्ति के लिए हम भले ही निर्जन वन में चले जाएँ तो भी हमें तनाव से छुटकारा नहीं मिलेगा। उेसी परिस्थितियों में हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बाह्य परिस्थिति ही एकमात्र तनाव का कारण नहीं है। मूलभूत वृत्तियों की कामनाएँ जो कि देह सुख व अन्य सम्बन्धित कारणों से प्रकट होती हैं, मानसिक तनाव में परिणत हो जाती है।

मानसिक तनाव होने का एक अन्य कारण जीवन जीने के प्रति गलत धारणाएँ भी हैं। यदि हम अपना जीवन समन्वित एवं संतुलित नहीं रखते अथवा अपने जीवन अस्तित्व के प्रति ही दृष्टिकोण नहीं अपनाते हैं तो हमारा तनावों की ओर अधोमुख होना निश्चित है। माना कि हमारी दैहिक कामनाओं के विफल होने से तनाव होता है, लेकिन यदि हम अपनी कामनाओं को सही दिशा में परीक्षण करें, तो हमें तनावों का उपचार भी तुरंत दृष्टिगत हो जाएगा।

जो व्यक्ति आत्माभिव्यक्ति के लिए अत्यन्त आतुर रहते हैं वे भी साधारणतया मानसिक तनावग्रस्त होते हैं। जब वे अभिव्यक्ति आवेग से वंचित रह जाते हैं तो सामान्यतया ऐसा देखा गया है कि उनके व्यवहार में विचित्रता झलकने लगती है। वे विद्रोह का मार्ग अपनाने लगते है। उदाहरणार्थ जब माता-पिता अपने बच्चों पर इस विश्वास के वशीभूत होकर कि इससे उनका भला होगा कुद बंधन लगाते हैं तो बच्चें निश्चित रूप से विद्रोह करते हैं। उन्हें लगता है कि उनकी स्वतंत्रता पर अकारण ही अवरोध लगाए जा रहे हैं। जब पिता अपने बच्चों को आदेश देते हैं कि इतना अधिक टी.वी. मत देखो तो बच्चे टी० वी. देखने के लिए लालायित हो जाते हैं। बच्चे रोकटोक का बुरा मानते हैं। ज्यों ज्यों वे उम्र में बड़े होते हें उनमें आत्म प्रकाशन की लालसा अधिक तीव्र होती जाती है। किशोरावस्था के बालकों के अनेक उदाहरण मिलते हैं जो अपने माता-पिता के विचारों एवं आदर्शों के विपरीत व्यवहार करते हैं। यह उत्तरदायित्व माता-पिता का ही है कि वे

अपने बच्चों की मनोवैज्ञानिक मांगों को भली भाँति समझकर उनके साथ तदनुकूल व्यवहार करें। जब कभी भी बच्चों में यह भावना प्रबल होती दिखाई देती है कि उन पर हमेशा बंदिशे लगाई जाती हैं, अवरोध उपस्थित किए जाते हैं और उनकी इच्छाओं को विफल किया जा रहा है तो उनके लिए विद्रोह करना अनिवार्य हो जाता हैं। थोड़ी सी समझदारी मात्र से यह स्थिति टाली जा सकती है। बच्चों की आत्माभिव्यक्ति की मांग के प्रति उनका रवैया सहानुभूति पूर्ण होना चाहिए और ऐसे उपायों से बचने का प्रयत्न करना चाहिए जिसके परिणाम गंभीर हो सकते हैं। आत्मप्रकाशन के सुअवसर प्रदान किए बिना बच्चों के मन में अनेक प्रकार की अस्वाभाविकताएँ पैदा हो जाएँगी।

मानसिक तनाव का एक अन्य कारण बहुत भावनात्मक आवेग है, जिसे हम महत्वाकांक्षा कहते हैं। एक व्यक्ति जिसमें प्राधिकार, पद अथवा बौद्धिक उपलब्धियों की प्रबल इच्छा होती है और वह दूसरों से प्रतिस्पर्धा में मनचाहा फल पाने में अपने आपको सक्षम नहीं पाता अथवा किसी अन्य को पहले से ही उस पद पर आसीन देखता है जिसकी लालसा उसे थी तो वह अत्यन्त निराश हो जाता है। तब उसे जो चाहिए उसे पाने में वह आशाहीन हो जाता है तथा भीषण तनाव से पीड़ित हो जाता है। उदाहरणार्थः विश्वविद्यालय में विभिन्न विभागों की अध्यक्षता का प्रश्न लीजिए। आजकल यह पद बारी-बारी से दिया जाता अतः समस्या अधिक नहीं है। यदि इस नियम को समाप्त कर दिया जाए तो विभिन्न विभागों में प्रोफेसरों में भारी तनाव हो जाएगा। एक व्यक्ति यह महसूस कर सकता है कि अध्यक्ष पद के लिए उसकी विश्वसर्नीयता अधिक है किन्तु विश्वविद्यालय उसकी उच्च योग्यता को उचित मान्यता नहीं देता। दूसरे शब्दों में आकांक्षा असीम चिन्ता व तनाव उत्पन्न करती है।

इन दिनों यह देखने में आया है कि युवा विद्वान तीव्र आकांक्षा के कारण मानसिक रोग एवं आकुलता से ग्रस्त हैं। उनके व्यवहार में अस्वस्थता एवं मनोदौर्बल्य प्रकट होने लगता है चिन्ता व मनोरोग से पीड़ित विद्वान वे हैं जो अपने प्रतिस्पर्धियों से सदा आगे निकलना चाहते हैं। जब उनकी इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं तो वे तीव्र मानसिक तनाव से घिर जाते हैं। इस प्रकार पद, मान एवं ख्याति की उच्चाकांक्षा तनाव का कारण बन जाती है।

तनाव उत्पन्न करने वाले घटकों में एक और कारण बौद्धिकवाद है। इसे उदाहरण से समझाना उपयुक्त होगा। मान लीजिए एक व्यक्ति विद्वानों के परिवार में जन्म लेता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त है - कोई महास्नातक है, डॉक्टर है इत्यादि। सभी की शैक्षणिक क्षमताएँ चमत्कार पूर्ण हैं किन्तु यह व्यक्ति इतना मेधावी नहीं है यद्यपि इसकी रुचि अन्य क्षेत्र में है। यह व्यक्ति सोचता हे, 'यदि मैं अपनी पसन्द का काम करूं तो मेरे कुटुम्बी क्या सोचेंगे। मैं विद्वानों के परिवार में जन्मा हूँ, यदि मैं शिक्षा में अकादमिक श्रेष्ठता अर्जित नहीं करता तो मेरा जीवन कष्टपूर्ण हो जाएगा।' मजबूर होकर वह परिवार के लोगों का अनुकरण करने का प्रयत्न करेगा। और अपने लिए मानसिक संताप को निमंत्रण देगा किन्तु वह अपने आप को स्वस्थ रख सकता है, यदि वह सोचे, 'मेरी क्षमता व दक्षता किसी अन्य क्षेत्र में है, मेरी विशिष्टता अलग है और मैं अपने ही क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त कर सकूँगा। मेरे लिए पिता अथवा दादा के समान अकादमिक श्रेष्ठता की उपलब्धि आवश्यक नहीं है।' इस प्रकार यदि वह अपनी योग्यता व क्षमता के अनुकूल आगे बढ़ेगा, तो वह प्रसन्नचित्त व सन्तुष्ट रहेगा तथा अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

महत्वाकांक्षा हमें अत्यधिक परिश्रम करने के लिए बाध्य करती है और यदि व्यक्ति अतिपरिश्रमरत है तो उसका तनावग्रस्त होना अवश्यम्भावी है। जिस व्यक्ति पर अनेक दायित्व हों, वह उच्च आकांक्षा से अभिभूत अथवा अन्य कारण से विश्राम नहीं कर पाता तथा निरंतर ही भयावह तनाव से ग्रसित रहता है। इस प्रकार प्रशंसनीय एवं समाज द्वारा मान्य उच्चतर मूल्य भी विभिन्न प्रकार के असन्तुलन का कारण बनते हैं जो बहुत मानसिक तनाव की ओर ले जाते हैं। ☐

✦✦✦✦✦

मदालसा

- स्वामी विवेकानन्द

(अमेरिका के विभिन्न स्थानों में वक्तृता देने के बाद स्वामीजी क्लांत हो गये थे। तब वे न्यूयार्क के पास एक निर्जन स्थान में एकांतवास में चले गये। वहाँ उनके पास विशेष रूप से शिक्षा लाभ करने हेतु कुछ नर-नारी भी चले आये। मदालसा की कहानी मार्कण्डेय पुराण में संकलित है।-सं)

प्राचीन काल में शत्रुजीत नामक एक राजा थे। उस समय अनेक ऋषि मुनि वन में तपस्या करते थे। दानव, राक्षस और असुर मुनियों के आश्रम में आ उत्पात मचाते थे। देश के राजा तब असुरों के साथ युद्ध करके, उन्हें मारकर या भगाकर आश्रमों की रक्षा करते थे। मुनि-ऋषि तब निश्चिन्त मन से धर्म-कर्म करते थे।

शत्रुजीत जब राजा थे, तब गालब नामक एक मुनि हिमालय में आश्रम बना तपस्या करते थे। देश-विदेश में गालब प्रसिद्ध संत थे। दानवों ने एक बार गालब के आश्रम में भयंकर उत्पात मचाया। राजा शत्रुजीत ने जब यह समाचार सुना तब उन्होंने तत्काल अपने पुत्र ऋतध्वज को गालब के आश्रम की ओर प्रस्थित कर दिया।

राजकुमार ऋतध्वज दुर्द्धर्ष वीर थे। घोड़े पर सवार हो, तीर धनुष हाथ में ले वे आश्रम में पहरा देने लगे। उनके भय से सारे दानव भाग गये। दानवों में एक मायावी क्षमता होती है। वे अपना रूप वदल कोई भी रूप धारण कर सकते हैं।

एक दिन पातालकेतु ने शूकर रूप धारण कर गालब के आश्रम में उत्पात शुरू किया। गालब तब पूजा पर बैठे थे। उस भीषणाकार शूकर को देख सारे शिष्य चीत्कार कर उठे। कुमार ऋतध्वज ने तभी एक तीर से शूकर पर वार किया। तीर जाकर शूकर के पेट में विध गया। पेट में तीर लेकर ही वह शूकर भागने लगा। राजकुमार ऋतध्वज उसका पीछा करने लगा।

वहुत दूर जाने के बाद शूकर कहीं गायब हो गया। घोड़ा भी ऋतध्वज को ले अचानक एक बड़े गढ़े में गिर गया, परन्तु किसी को भी चोट नहीं आयी। और भी आश्चर्य की बात, गड्ढ़े में एक सुन्दर रास्ता था, परंतु अंधकार था। अंधकार में ही घोड़ा उस पथ पर दौड़ पड़ा। कुछ देर बाद ही राजकुमार ने प्रकाश देखा, और देखी एक विशाल राजपुरी।

राजकुमार एकदम हतप्रभ थे। वे जिधर देखते, गगनचुम्बी इमारतों के सिवा कुछ भी न दिखता। वे चारों ओर घूमने लगे। राजकुमार ने सोचा कि वह शूकर यहीं कहीं छिपा है। परन्तु वह शूकर और न दिखा। सामने एक बड़ा घर था। वह घर जैसा सुन्दर वैसा ही बड़ा भी था। राजकुमार ने सुना घर के भीतर से रोने की आवाज आ रही थी। राजकुमार के मन में कौतूहल हुआ। घोड़े को बाहर बांध उन्होंने घर में प्रवेश किया। भीतर जाकर देखा कि एक अत्यंत सुन्दरी राजकुमारी रो रही है।

राजकुमारी का नाम था मदालसा। वह स्वर्ग के गन्धर्वराज विश्वासुर की कन्या थी। विवाह करने के लिए पातालकेतु उसे स्वर्ग से उठा लाया था। मदालसा पातालकेतु से कतई विवाह करना नहीं चाहती थी। इसलिए उस दानव ने उसे बन्दी बनाकर रखा था एवं आनेवाले दिन को उससे विवाह करना चाहता था।

मदालसा का दुःख देखकर कुमार भी दुःखित हो उठा। उसने मदालसा से कहा, "तुम मेरे साथ चलो। मैं तुमको अपने घर ले चलूँगा।"

मदालसा राजी हो गयी। तब ऋतध्वज मदालसा को घोड़े पर बिठाकर पातालपुरी से रवाना हो गया। पातालकेतु के अनेक दानवों ने आकर ऋतध्वज पर आक्रमण किया। ऋतध्वज ने भी महापराक्रम के साथ युद्ध करना प्रारम्भ किया। कुमार के वाणों ने अनेक दानवों को मार गिराया। बाकी सब भाग गये।

फिर मदालसा को लेकर ऋतध्वज निर्विघ्न पाताल से निकल गये एवं घर की ओर घोड़े को द्रुत गति से दौड़ाने लगे। मदालसा को देख एवं इतने दिनों बाद पुत्र से मिलकर

राजा एवं रानी दोनों ही अत्यन्त आनन्दित हुए। खूब धूम-धाम के साथ मदालसा एवं ऋतध्वज का विवाह हो गया। मदालसा की सुन्दरता अपूर्व थी - तीनों लोकों में उस जैसी सुन्दरी कोई न थी।

सभी लोगों के मुख पर एक ही बात थी - रूप एवं वीरत्व में कार्तिक जैसे राजकुमार को रूपवती लक्ष्मीस्वरूपा सरस्वती मिली है। राजा ने कामना की कि पुत्र मेरे वंश का नाम रोशन करे एवं पूर्व-पुरुषों का मुख उज्ज्वल करे। रानी ने पुत्र एवं पुत्र-बधू के दीर्घायु होने की कामना की।

मदालसा ने परम भक्ति से श्वसुर एवं सास की सेवा करनी शुरू की। राजकुमार परम सुख के साथ दिन बिता रहे थे। सुख के दिन हमेशा नहीं रहते। दिन के बाद रात आती है, रात के बाद दिन। राजपुरी में एक दिन संदेश आया कि फिर दानवों ने मुनियों के आश्रम में उत्पात मचाया हैं समाचार सुनकर राजा चिन्तित हो गये। ऋतध्वज को राजा ने पुनः दानवों के दमन हेतु भेजा। युद्ध का साज पहनकर राजकुमार ने माता-पिता को प्रणाम किया, मदालसा से विदाई ली, फिर घोड़े पर सवार होकर आश्रम की ओर यात्रा प्रारंभ की। यात्रा के समय राजा ने आशीर्वाद दिया, सभी देवी देवताओं से दुआएँ माँगी। फिर मदालसा ने सजल नयनों से विदाई दी।

गालब के आश्रम में ऋतध्वज के हाथों वाणविद्ध होकर पातालकेतु ने शूकर रूप में पाताल में जाकर प्राणत्याग किया था। पातालकेतु का एक भाई था। नाम था तालकेतु। ऋतध्वज से प्रतिशोध लेने के लिए वह अनेक दिनों से चेष्टा कर रहा था। उसने मुनिवेश धारण कर यमुना के तीर पर एक आश्रम बनाया था। ऋतध्वज को आते देख तालकेतु के सारे अनुचर मुनिवेश में यमुना तट पर धर्म-कर्म में जुट गये।

राजकुमार घोड़े पर चढ़कर तीर-धनुष लेकर चारों ओर घूमने लगे। कहीं कोई दैत्य-दानव नहीं दिखा। तालकेतु ने उससे कहा, "कुमार, यहाँ दानवों ने भीषण उत्पात मचा रखा है। कितने कष्टों-यंत्रणाओं में हमारा दिन बीतता है। आपको देख सारे दानव भयभीत हो भाग गये हैं। यदि आप यहाँ से चले जायँ तो वे पुनः उत्पात मचायेंगे। इसलिए हमारी इच्छा है कि आप कुछ दिनों तक यहीं रहिए।

राजकुमार ने साफ मन से उसकी बातों पर विश्वास कर लिया। एक दिन तालकेतु ने कुमार से कहा, "बहुत दिनों से मेरी यज्ञ करने की इच्छा है। परन्तु यज्ञ के लिए दक्षिणा मैं संग्रह न कर सका हूँ। दक्षिणा के बिना यज्ञ का कोई फल नहीं होता। आप यदि अपना मुक्ताहार मुझे दें, तभी यज्ञ सम्पन्न होगा।

अति आनन्द के साथ कुमार ने अपना मुक्ताहार खोलकर तालकेतु के हाथों सौंप दिया। मुक्ताहार को हाथ में ले तालकेतु परमानन्द के साथ यमुना तट पर चले गये। राजकुमार ने सोचा कि मुनि यज्ञ करने गये हैं। इसलिए सतर्क होकर वे मुनि के आश्रम पर पहरा देने लगे।

वस्तुतः मुनि यज्ञ नहीं कर रहे थे। मायावी तालकेतु एक वृद्ध मुनि के वेश में राजा शत्रुजीत की सभा में गया। मुनि को देख राजा सिंहासन से उठ खड़े हुए और कहा, "स्वागतम् देवता, स्वागतम्। आज मेरा परम सौभाग्य है। आइए, आसन ग्रहण कीजिए।"

मुनि ने कहा, "महाराज, महाविपदा आ गयी है। मैं वृद्ध तपस्वी हूँ, फिर भी मैं विचलित हो गया।"

मुनि की आँखें छलछलाने लगीं। उसकी बातें सुनकर राजा एवं सभी उपस्थित व्यक्तियों को विषम उत्कण्ठा होने लगी। मुनि ने कहना प्रारंभ किया, "यमुना तट पर मेरा आश्रम है। मेरे आश्रम के निकट एक दिन राजकुमार के साथ एक दानव का महायुद्ध हुआ। कुमार की वीरता वस्तुतः दर्शनीय है। परन्तु दानवों ने मिलकर कुमार को निष्प्राण कर दिया। यह देखिये वह मुक्ताहार जो कुमार की ग्रीवा की शोभा बढ़ाता था, शूद्र तपस्वियों ने नदी-तीर पर कुमार का अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया। हाय, हाय, मुझे ही यह निष्ठुर संवाद लाना पड़ा।"

राजा ने मुक्ताहार हाथ में लेकर देखा, यह कुमार का ही हार था। मुनि ने विदाई ली। विषाद की काली छाया ने समस्त राजपुरी को आछन्न कर दिया। पति की मृत्यु का सामाचार सुनकर मदालसा ने शोक से प्राण त्याग दिये। राज्य में हाहाकार मच गया।

यमुना के तीर पर जब तालकेतु लौटा तो उसने देखा कि राजकुमार आश्रम के बाहर पहरा दे रहे थे। खूब आनन्दित होकर उसने कहा, 'आपकी सहायता से मेरा यज्ञ

संपन्न हो गया। बहुत दिन हो गये, आप घर नहीं गये। मैं अपने दिव्य नेत्रों से देख सकता हूँ आपके माता-पिता स्त्री सभी चिंतित हैं। अभी तो दानवों का उत्पात भी नहीं है। आप घर लौट जाइए, हम आपको अवश्य समाचार भेजेंगे।"

तालकेतु के कथनानुसार ऋतध्वज घर लौट गये। घर जाकर सारी बातों को सुनने के पश्चात् ऋतध्वज को इतना दुःख हुआ कि वे स्थिर नहीं रह सके। वे अपने कमरे में जाकर रोने लगे। वे किसी के साथ न बात करते, न किसी से मिलते, केवल मदालसा के बारे में सोचते और कभी-कभी रोते। राजकुमार कैसे थे, और कैसे हो गये।

उस समय नागराज नामक एक राजा दूसरे देश में राज्य करते थे। उसके दो पुत्र थे- दोनों ही कुमार के परम मित्र थे। ऋतध्वज को प्राणों से भी अधिक चाहते थे। मदालसा की मृत्यु कुमार का दुःख यह सब समाचार उन्हें धीरे-धीरे प्राप्त हुआ। पुत्रद्वय ने नागराज को सब कुछ बताकर कहा, "कि मदालसा के बिना कुमार जिन्दा नहीं बचेंगे।"

इससे नागराज को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सोचा, "जैसे भी हो, मदालसा को लाकर कुमार को देना पड़ेगा।" यह निश्चय करने के बाद वे हिमालय पर जाकर कठोर तपस्या करने लगे। तपस्या से सन्तुष्ट होकर शिव ने दर्शन दिये एवं नागराज से वर मांगने को कहा।

नागराज ने हाथ जोड़कर कहा -"यदि आप सचमुच प्रसन्न हैं तो वर दीजिए कि मदालसा मुझे कन्या रूप में प्राप्त हो जिस उम्र, जिस रूप एवं गुण को लेकर मदालसा मृत्यु को प्राप्त हुई उसी अवस्था में वह मेरे घर में जन्मग्रहण करे। पूर्वजन्म की सारी बातें भी उसे याद रहे।"

शिव ने कहा, "तथावस्तु। श्राद्ध के समय तुम श्राद्ध का एक पिण्ड खा लेना। मदालसा तुम्हारे दाहिने कान से जन्म ग्रहण करेंगी। जन्म के साथ ही वह अपने पूर्व की अवस्था एवं रूप में आ जाएगी। पूर्वजन्म की सारी बातें भी उसे याद रहेगी।"

यह कहकर शिव अन्तर्धान हो गये। उसके बाद श्राद्ध के दिन नागराज ने शिव के कथनानुसार एक पिण्ड खा लिया। उसके बाद नागराज के दाहिने कान से मदालसा का जन्म हुआ। जन्म के साथ ही उसने अपना पूर्व रूप, गुण सब कुछ प्राप्त कर लिया। इतना सब कुछ हो जाने पर भी नागराज ने किसी से कुछ न कहा। उन्होंने मदालसा को अन्तःपुरी में छिपा दिया एवं अपने पुत्रों से कहा कि वे अपने मित्र ऋतध्वज को यहाँ बुलाएँ।

पिता के कथनानुसार दोनों भाई ऋतध्वज के घर जाकर उपस्थित हुए। ऋतध्वज कहीं जाना नहीं चाहते थे, मित्रों के साथ भी उन्होंने अधिक बातें नहीं कीं। राजा और रानी ने सोचा, "यदि राजकुमार नागराज के घर जाता है, तब भला ही होगा। हो सकता है कि घूमने फिरने में वह पुनः स्वाभिमान अवस्था में वापस आ जाय।" राजा और रानी दोनों ने उसे समझाया, मित्रों ने भी बार-बार चलने को कहा। अन्ततः कुमार को राजी होना ही पड़ा।

नागराज के पुत्र ऋतध्वज को घर ले आये। नागराज ने खूब अच्छी तरह से इनका स्वागत किया। खाना पीना समाप्त होने के बाद कुमार को नागराज ने कहा, "तुम मेरे पुत्र के समान हो। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए, कैसे मैं तुमको सन्तुष्ट कर सकता हूँ?"

ऋतध्वज ने धीरे-धीरे कहा, "महाराज, आपकी कृपा, आपका प्रेम मुझे हमेशा याद रहेगा! परन्तु धन, मान, राज्य - ऐसा कुछ भी मुझे नहीं दिखता, जिसे प्राप्त कर मैं वस्तुतः सुखी हो सकूँ।"

इतना कहकर कुमार ने करुण दृष्टि से अपने मित्रों को देखा। कुमार की अन्तःवेदना को समझकर, नागराज के पुत्रों ने पिता से कहा,"पिताजी मदालसा को खोने के बाद, कुमार के मन में जरा भी शांति नहीं है। मदालसा को छोड़कर संसार की कोई वस्तु उसे शांति नहीं दे सकती।"

नागराज ने कहा, "एक बार जो मृत्यु को प्राप्त हो चुका है, उसे प्राप्त करना - यह स्वप्न में संभव है, या फिर आसुरी माया से।"

कुमार ने किसी भी उपाय से मदालसा को देखने की इच्छा प्रकट की।

"वत्स, यदि माया के प्रभाव से देखना चाहते हो, तो देखो, यह कहकर नागराज अन्तःपुर के गुप्तगृह से मदालसा को लिवा लाये। अचानक मदालसा को देख राजकुमार

विस्मय एवं आनन्द से मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े। थोड़ी सेवा-सुश्रूषा के बाद कुमार स्वस्थ हुए। नागराज के पुत्रों को भी यह पता न था कि मदालसा कैसे आ गयी। नागराज ने सबको मदालसा की कहानी सुना दी। ऋतध्वज के अन्तर में आनन्द का स्रोत फूट उठा, मुख पर हंसी फैल गयी। कृतज्ञ दृष्टि से कुमार ने नागराज को प्रणाम किया, मित्रों से विदा ली एवं मदालसा को ले घर की ओर प्रस्थान किया।

उन्हें देख राजा-रानी दोनों आवक् हो गये। उन्हें और आश्चर्य तब हुआ, जब उन्होंने ऋतध्वज के मुख से सारी बातें सुनीं। नगाड़े गूँजने लगे, राजमहल में खुशियाँ लौट आयीं, समग्र राजपुरी में प्रसन्नता के सहस्र दीपक मन्दहास करते नजर आने लगे। राजकुमार एवं मदालसा को देखने के लिए राजमहल के समक्ष लोगों की भीड़ लग गयी।

मदालसा पुनः श्वसुर-सास एवं स्वामी की सेवा करने लगी। मदालसा वैसी ही थी, परन्तु थोड़ी गम्भीर। रानी ने सोचा उम्र में वृद्धि के कारण शायद अब मदालसा गम्भीर हो गयी।

मनुष्य जब सोता है, तब विभिन्न स्वप्न देखा करता है। परन्तु जागने पर सारे स्वप्न धूमिल हो जाते हैं। परन्तु मानव जबतक सोया रहता है, सपनों में लीन रहता है, तबतक उसे यह पता नहीं रहता कि वह जो कुछ देख रहा हे वह मिथ्या है।

जन्म से पूर्व क्या था, मरने के बाद क्या होगा, यह सव नहीं जानने के कारण ही इस संसार की सारी वस्तुएं मनुष्य को नित्य एवं शाश्वत लगती हैं। जो पूर्व जन्म की बातें, मृत्यु की बातें, मृत्यु के बाद की बातें-सब कुछ जानता है, वही ज्ञानी होता है। वह इस संसार को स्वप्न के सिवा कुछ नहीं समझता।

मदालसा की मृत्यु हो चुकी थी। परन्तु शिव के वर के कारण मृतयु की बात पूर्वजन्म की घटनाएं - सभी उसे याद थीं। अतः वह शनैः-शनैः ज्ञानी हो उठी। वह सोचती,-शरीर, स्वामी, राजा, धन-सम्पदा कुछ भी नहीं रहेगा। आज जो है, वह कल नहीं दिखेगा। मनुष्य के अन्तर में जो है, वह कल नहीं दिखेगा। मनुष्य के अन्तर मे हो आत्मा है, सिफ़ वही रहेगी। मदालसा मन ही मन इन बातों को सोचती, बाहर कुछ भी प्रकाश नहीं करती। कुछ नहीं बताती, बस संसार के कामों में लीन रहती।

अनेक दिन बीत गये। राजा शत्रुजीत मारे गये, ऋतध्वज राजा बनने के बाद वे प्रजा को सन्तान की भाँति मानते थे। घर-घर में नये राजा की प्रशंसा होती।

इसी समय मदालसा को एक पुत्र हुआ। पुत्र नहीं, जैसे देवपुत्र हो। राजा ने उसका नाम रखा विक्रान्त। शुक्ल पक्ष के चाँद की भाँति विक्रान्त दिन पर दिन बड़ा होता गया। बड़े यत्न के साथ मदालसा उसे पालने लगी। जव वह थोड़ा बड़ा हुआ, तव मदालसा उसे नाना प्रकार की शिक्षा देने लगी। एक दिन विक्रान्त किसी कारणवश भयभीत हो रहा था। मदालसा ने उसे गोद में लेकर प्यार से पूछा, "क्यों रो रहे हो? किससे डर लगा? तुम्हें कोई नहीं ले सकता, मार नहीं सकता, दुख नहीं दे सकता। तुम कौन हो? तुम यह शरीर मात्र नहीं हो। तुम आत्मा हो। तुम्हारा जन्म नहीं है, मृत्यु नहीं है। तुम्हें भय नहीं है। इस शरीर को महज वस्त्र के रूप में तुमने पाया है। यह एक समय अवश्य नष्ट हो जाएगा, परन्तु उससे तुम्हें कुछ भी क्षति नहीं होगी। तुम्हारा विक्रान्त नाम हमने रखा है। यह तुम्हारा वास्तविक नाम नहीं है। तुम तो इस विराट आनन्द के कण हो, तुम आनन्दमय हो।"

माँ का प्यार पा, माँ की बातें सुनकर विक्रान्त ने रोना बंद कर दिया। शुरू-शुरू में वह माँ की बात उतनी अच्छी तरह से नहीं समझता था, परन्तु वे बातें उसे बहुत अच्छी लगतीं। उसके बाद धीरे-धीरे वह माँ के उपदेशों को कुछ हद तक समझने लगा। बगीचे के एक पेड़ पर विक्रान्त के लिए झूला बना दिया गया था। प्रत्येक शाम रानी उसे झूले पर बैठा हौले-हौले संगीत सुनाती। रानी का स्वर बड़ा मीठा था। रानी की बातें ज्ञानपूर्ण एवं उपदेशपरक हुआ करती थीं।

और थोड़ा बड़ा होने पर विक्रान्त संसार त्याग संन्यासी बन चला गया। बचपन से ही माँ से उपदेश ग्रहण करते-करते उसके मन में सचमुच ज्ञान का उदय हुआ था। वह समझ चुका था कि संसार में कुछ भी हमेशा के लिए न रहेगा, संसार में सब कुछ निस्सार है, सिर्फ धर्म एवं ज्ञान ही एक मात्र सार वस्तु हैं। यह ज्ञान और धर्म प्रत्येक मनुष्य के अन्दर विद्यमान है। जो इसे प्रकाश करने की चेष्टा करता है, उसी का ज्ञान प्रकाशित होता है।

विक्रान्त संन्यासी बन चला गयां राजा बड़े दुखित हुए। परन्तु उन्होंने रानी को कुछ भी न कहा। रानी ने सोचा कि पुत्र ने ठीक ही किया है। इस समय रानी को और एक पुत्र की प्राप्ति हुई। वह भी विक्रान्त के जैसा ही सुन्दर था। राजा ने प्यार से उसका नाम रखा सुबाहु। इस बार भी मदालसा उस नामकरण के बाद मुस्कुरायी।

सुबाहु धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। रानी ने विक्रान्त को जिस प्रकार शिक्षा दी थी, ठीक उसी प्रकार वह उसे भी शिक्षा देने लगी। सुबाहु जब बड़ा हुआ तब वह भी संन्यासी हो चला गया।

मदालसा को तब और एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। राजा ने उसका नाम रखा अरिन्दम। मदालसा उसे भी विक्रान्त और सुबाहु जैसी शिक्षा देने लगी। बड़ा होकर वह भी संन्यासी बनकर चला गया।

मदालसा को पुनः एक पुत्र हुआ। वह शेष संतान था। राजा गंभीर रूप से चिंतित हो गये। रानी ने एक के बाद एक उसके सारे पुत्रों को संन्यासी बना दिया था। राजा मदालसा को इतना चाहते थे कि वे उसके किसी कार्य में बाधा नहीं पहुँचाना चाहते थे। परन्तु जब रानी ने सारे पुत्रों को संसार तयागी बना दिया, तब राजा और स्थिर नहीं रह सके। एक दिन राजा ने रानी के पास आकर कहा इससे पहले तीन पुत्रों का जब मैंने नामकरण किया था, तब तुम प्रत्येक बार हँसी थीं। क्यों तुमने ऐसा किया था, मैं समझ न सका था। मेरी इच्छा है, इस बार तुम इसका नाम करण करो। और एक विशेष अनुरोध है, तुम्हारी शिक्षा के फलस्वरूप मेरे तीन पुत्र संन्यासी हो गये। इस पुत्र को तुम त्याग की शिक्षा मत दो, संसार की शिक्षा दो।

रानी ने उत्तर दिया, "मैं आपके आदेश का पालन करूँगी। आत्मा का कोई नाम नहीं हो सकता। विक्रान्त, सुबाहु, अरिन्दम आदि नाम आत्मा को नहीं दिया जा सकता। इसलिए मैं हँसी थी। आपने जब कहा है, तब मैं ही इसका नाम रखूँगी एवं संसार-धर्म की शिक्षा दूँगी, त्याग की नहीं।"

रानी ने छोटे पुत्र का नाम रखा अलर्क अलर्क शब्द का एक अर्थ होता है, पागल कुत्तां अलर्क धीरे-धीरे बड़ा होता गया। रानी उसे परम यत्न के साथ राज-धर्म, संसार-धर्म एवं गृहस्थ-धर्म की शिक्षा देने लगी। रानी की शिक्षा के फलस्वरूप अलर्क कुछ ही दिनों में विभिन्न विद्याओं में पारंगत हो गया। उसके गुणों एवं विद्या को देख सभी प्रशंसा करते।

अलर्क जब सुयोगय हुआ, तब राजा ऋतध्वज ने उसे राज-काज सौंप बन को प्रस्थान किया। राजा के साथ मदालसा भी गयी। विदाई लेते वक्त रानी ने अलर्क के हाथ में एक अंगूठी थमाते हुए कहा, "वत्स, संसार धर्म अत्यंत कष्टकर है, राज-धर्म अत्यंत कठिन। यदि किसी दिन तुम्हारे सामने असह्य दुःख उपस्थित हो, तब इस अंगूठी को खोलकर देखना, उसके अन्दर तुम्हारे लिए मैंने एक विशेष वस्तु रख दी है।

राजा होने के पश्चात् अलर्क प्रजा पालन करने लगे। नये राजा के शासन में प्रजा परम सुख के साथ वास करने लगी। प्रजा का आनन्द देख, अलर्क भी अति आनन्दित रहता।

अनेक दिनों बाद किसी कारणवश अलर्क के मन में बहुत दुःख हुआ। तब माँ की बात याद आयी। हाथ की अंगूठी को खोलकर उसने देखा कि उसके अंदर एक छोटे कागज के पतले-पतले अक्षरों में अनेक उपदेश लिखे हुए हैं। उसे पढ़ अलर्क के मन में शांति एवं बल का संचार हुआ। उसने अन्य एक व्यक्ति के ऊपर राज-भार सौंप, दत्तात्रेय ऋषि के आश्रम में धर्म-शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रस्थान किया।

मदालसा ने अपने पुत्र के साथ जो अमूल्य उपदेश लिख दिया था, वह सब पुराण में विस्तृत रूप में लिखा हुआ है। वह सब हिन्दुस्तान के समक्ष चिरकाल के लिए आदरणीय रहेगा। धन्य है मदालसा, और धन्य है वह देश, जिस देश के निवासी मदालसा जैसी माँ की गोद में जन्म ग्रहण करते हैं, एवं धर्म की सच्ची शिक्षा प्राप्त करते हैं। □

फिर न होगा दिल का रोग

शालिनी मंगलानी

व्यायाम

नियमित व्यायाम से लाभदायक हाईडेंसिटी लाइपोप्रोटीन (एच. डी. एल.) कोलेस्ट्रॉल में वृद्धि होती है जो कि एथीरोस्क्लेरोसिस के विरुद्ध सुरक्षा देता है, यह दिल की कार्य क्षमता भी बढ़ाता है, रक्तचाप कम करता हैं, शारीरिक वजन नियंत्रण और खून के थक्कों के कारकों में संतुलन बराबर करके दाब को कम करता है।

सप्ताह में पांच दिन हल्का व्यायाम प्रतिदिन दो बार १५ मिनट तक करें। हल्के व्यायाम से कम पसीना और सांसें तेज हो जाती हैं।

अपनी खुराक बढ़ायें

कम चर्बीयुक्त भोजन, रक्त वसा से एक अच्छा संतुलन बनाता है, जो स्वस्थ एवं वजनी बनाये रखने में सहायक होता है। संतृप्त वास जैसे मक्खन को असंतृप्त वसीय पदार्थों से बदल लें। फलों व हरी सब्जियों का सलाद खायें और नमक कम करें।

एक स्वस्थ वजन बनायें

मधुमेह को बढ़ने से रोकें, उच्च रक्तचाप और अधिक खतरनाक चर्बी को एक स्थान पर बढ़ने से रोकें। उदर के चारों तरफ का वजन हृदय को अधिक कष्ट प्रदान करता है।

नियमित व्यायाम के साथ एक स्वस्थ आहार भी करें। सम्भव हो तो पूरे परिवार को शामिल करें और यदि आप वजन घटाना चाहते हैं तो दूसरों से सहयोग लें कि वे आपके वजन पर निगाह रखें।

धूम्रपान रोकें

यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण परिवर्तनीय कारण है। धूम्रपान करने वाले ५० वर्ष से कम उम्र में हार्ट अटैक से मरने वालों की संख्या धूम्रपान न करने वालों से दोगुनी होती है। धूम्रपान से एड्रिनेलिन और हृदय दर, उच्च रक्तचाप दर को बढ़ाती घटाती है और थ्रॉम्बोसिस (रक्त के थक्कों) को बढ़ाती है।

इसको रोकने के लिए आप निकोटीन पैचेज, चुइंग गम, एक्यूपंचर, ध्यान और मनोवैज्ञानिक या इच्छाशक्ति से शांत कर सकते हैं। चाहें तो मदद के लिए डॉक्टर और अपने मित्रों और परिचितों से सहायता लेकर प्रयत्न कर सकते हैं, जो पूर्व में धूम्रपान करते हों। यदि आप अधिक धूम्रपान करते हैं और लम्बे समय से खूब धूम्रपान कर रहे हैं तो दिल के दौरे से आपके मरने की बेहद आशंका रहती है।

अपना ब्लडप्रेशर कम करें

लगभग २० प्रतिशत से अधिक वयस्क उच्च रक्तचाप वाले होते हैं। यह हृदय में खिंचाव पैदा करता है और धमनियों को कड़ा करता है जो दाव को और बढ़ाता है। यह आनुवंशिक है और जीने के अंदाज व आदतों का नतीजा है।

अपना वजन कम करें। नमक और वसीय भोजन को कम करके हटायें। धूम्रपान, मदिरापान को परिमित रूप से रोकें और तनाव को कम करें। यदि जीवन जीने के ढंग में सफलतापूर्वक बदलाव नहीं हो रहा हो तो संभवतः लम्बे समय तक इलाज की आवश्यकता है।

दबाव कम करें

थोड़ा बहुत मानसिक दबाव तो सजग व चलायमान रखता है किन्तु अर्सा तक इसके उच्च स्तर से एड्रिनेलिन स्तर, हृदयगति व रक्तचाप में वृद्धि होती है। हृदयरोग दबाव का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं बल्कि दबाव के कारण धमनियों के सँकरी होने का परिणाम है। ध्यान व शिथिलीकरण के सहारे मानसिक, शारीरिक दबाव कम किया जा सकता है। काम सुनियोजित रखें, यथार्थवादी लक्ष्य निर्धारित करें और घर-गृहस्थी के काम मिल-बाँटकर करें।

मधुमेह नियंत्रण

मधुमेह दिल के दौरे और हृदय रोग के खतरे को दोगुना कर देता है। संभवतः क्योंकि यह बढ़ते वजन, उच्च कोलेस्ट्राल, उच्च रक्तचाप और कमजोर प्रवाह से सम्बन्ध रखता है।

यदि आप मधुमेह के रोगी हैं तो दृढ़तापूर्वक लगातार स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन करने का तरीका अपनायें। और सकारात्मक जीवन व्यूह रचना से हृदय रोग और अन्य प्रकार के खतरों को कम कर सकते हैं। □

उत्तर काशी में स्वामी भूतेशानन्द जी का शतवार्षिकी जन्मोत्सव समापन समारोह

उत्तरकाशी में श्री रामकृष्ण सेवा मन्दिर सोमसार द्वारा आयोजित श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द ही महाराज का शतवार्षिकी जन्मोत्सव समापन समारोह गत् ता० १६ अक्टूबर २००२ से ता० २१ अक्टूबर २००२ तक भव्य कार्यक्रमों से श्री सारदा मठ तथा रामकृष्ण सारदा मिशन, दक्षिणेश्वर की सचिव प्रव्राजिका अमलप्राणा माता जी की अध्यक्षता में सुसम्पन्न हुआ। सारदा मठ की भास्करप्राणा, तापसप्राणा एवं अन्य माता जी का भी सान्निध्य प्राप्त हुआ। कोलकाता से सेवा मन्दिर के सचिव डॉ० गौर दास, उपाध्यक्ष डॉ० सेवल गुप्ता एवं भक्तों का समावेश रहा।

ता० १६ अक्टूबर को उत्तरकाशी के १६ विद्यालयों के छात्र-छात्राओं द्वारा श्री श्री ठाकुर रामकृष्ण देव एवं माँ सारदा देवी पर चार मिनट की भाषण प्रतियोगिता आयोजित करवायी गयी। प्रातः के सत्र में १२ वर्ष तक की आयु के छात्र-छात्राओं ने श्री माता जी की जीवनी एवं सन्देश तथा दोपहर के सत्र में कक्षा ६ से कक्षा १२ तक के छात्रों ने भगवान् श्री रामकृष्ण देव की जीवनी एवं सन्देश पर भाषण दिया। ८ छात्रों ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया। प्रातः सत्र में पूज्या अमलप्राणा माता जी, तापसप्राणा एवं भास्करप्राणा माता जी ने प्रतियोगी छात्र-छात्राओं का तीन घंटें तक बड़े मनोभाव से भाषण सुना। माताजी कहने लगी कि बच्चों की मेधा प्रशंसनीय है। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय प्रतियोगी का चयन केवल आधे अंक के अन्तर से रहा। बच्चों एवं सभी समागतों के भोजनोपरान्त बड़े छात्र-छात्राओं की प्रतियोगिता में निर्णायक मंडल श्रीमत् स्वामी शरणानन्द जी महाराज एवं दो अन्य सन्त रहे। छात्र-छात्राओं द्वारा खूब जमकर भाषण हुआ। किसी को अनुमान ही नहीं था कि बच्चों में प्रतिभा है। एक छात्रा तो भाषण देते समय विह्वल हो उठी। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो भगिनी निवेदिता ही सम्बोधन कर रही है। दोनों सत्र छः घंटे के रहे एवं ८० छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। बच्चों के अभिवावक एवं विद्यालय के अध्यापक-अध्यापिकाएँ भी उपस्थित रहीं। ता० २० अक्टूबर को अपराह्न में लक्षेश्वर स्थित स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज की साधनास्थली पर आयोजित प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय दोनों भागों के छः छात्र-छात्राओं को पूज्या माताजी के कर-कमलों द्वारा, आशीर्वाद द्वारा पुरस्कृत किया गया। इसी अवसर पर गंगोरी स्थित एस. ए. एस. एकेडमी के नन्हें-मुन्ने छात्र-छात्राओं द्वारा बहुत ही सुन्दर अभिनय प्रस्तुत किया गया। ता. २१ अक्टूबर को महाराज जी के साधना-स्थल पर पूजनीया माता जी के सान्निध्य में समागत भक्तों ने वैदिक स्तोत्र, गीता पाठ एवं भक्ति गीतों का सामूहिक पाठ किया। सेवा मन्दिर के मानद सचिव डॉ० गौर दास के धन्यवाद ज्ञापन एवं प्रसाद ग्रहण से समारोह में उपस्थित सभी भक्त आनन्दित हुए।

स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज ने लक्षेश्वर स्थित दण्डी क्षेत्र की कुटिया में सन् १६२६ से १६३१ तक एवं १६३४ से मार्च १६३६ तक रहकर तपस्या की थी। अभी इस कुटिया में निरन्तर श्री महाराज जी के भक्तों द्वारा प्रतिदिन पूजा होती है। गत वर्ष शताब्दी समारोह के अवसर पर रामकृष्ण मठ एवंमिशन के सह-सचिव स्वामी शिवमयानन्द जी महाराज एवं आठ साधु वृन्द का आगमन हुआ था। स्वामी नित्यमुक्तानन्द जी महाराज ने जो कई वर्षो तक महाराज जी के मुख्य सचिव रहे, सभा में उपस्थित भक्तों को महाराज श्री के कई अनुभव सुनाये। महाराज जी अपनी बात बहुत कुरेदने पर जब कभी सुनाते थे। चार दिन तक ज्वर से पीड़ित कुटिया में लेटे रहे। एक संन्यासी ने कहा कि ले ब्रह्मचारी चार आने का दूध पी ले। महाराज जी ने चौअन्नी ली किन्तु कुछ क्षण बाद ही वापस कर दी। एक सप्ताह तक ज्वर में रहे। विनोद में महाराज श्री कहने लगे कि अब तो मुझे एक छींक आने पर गणेश चारों तरफ डाक्टरों से घेर देता है।

रामकृष्ण मिशन यूनेस्को परस्कार के लिए चयनित

भारत के रामकृष्ण मिशन को यूनेस्कों के पुरस्कार के लिये चुना गया है।

यूनेस्कों ने बताया रामकृष्ण मिशन को सहिष्णुता और अहिंसा के सिद्धांतो के प्रसार में योगदान के लिये विशेष रूप से सम्मानित करने के लिए चुना गया है। यूनेस्को के प्रबंध निदेशक कांचिरो मातसूरा ने बताया कि एक अंतर्राष्ट्रीय ज्यूरी ने सर्वसम्मति से इस पुरस्कार के लिये रामकृष्ण मिशन का चयन किया। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल भी ज्यूरी के सदस्यों में थे। १६ नवम्बर को अंतर्राष्ट्रीय सहिष्णु दिवस के दिन यह पुरस्कार दिये।

ईश्वरप्राप्ति के सात सहज उपाय

डा० निवेदिता बक्शि
कुरला, मुम्बई

ठाकुर श्री रामकृष्ण देशविदेश में इतने लोकप्रिय क्यों है ? रामकृष्ण भावधारा में सारा विश्व क्यों इतना आंदोलित हो रहा है ? इसका उत्तर बडा ही सरल है। ठाकुर ने हर वर्ग, हर व्यक्ति के लिये सहज और सरल उपाय बताये हैं । गिरीशघोष जैसे दुश्चरित्र व्यक्ति भी ठाकुर के सान्निध्य में आकर क्या से क्या बन गये। नटी विनोदिनी जैसी पतिता स्त्री ठाकुर के आशीर्वाद से भक्तिरस में डूब गई। ठाकुर भक्तवत्सल हैं। उन्हें मालूम था संसारियों के लिये ईश्वर की साधना करना कितना कठिन है ! इस कारण उन्होंने संसारियों के लिये सात सहज उपाय बतायें हैं।

(1) अच्छा लगे या न लगे, एकबार श्रध्दापूर्वक मुझे नमस्कार करने के लिये हाथ उठाओ।

(2) सिर्फ आने जाने से होगा । मेरे पास मंदिर में आते जाते रहना। इसीसे प्रेम बढ़ेगा ।

(3) सबेरे उठकर मुझे अपने ह्रदय में देखने की कोशिश करों । अगर संभव न हो तो मेरी तस्वीर देखो।

(4) मुझ पर ' विश्वास' रखो। जो मागोगे वही मिलेगा

(5) अगर तुम साधना नहीं कर सकते तो अपना स कुछ मुझे समर्पण करो। मुझे अपना " बकलम (भार) दे दो । मैं तुम्हारा सारा भार लूंगा ।

(6) अगर तुम्हें मेरे पास आने के लिए समय न मिले सिर्फ मुझेसे प्रार्थना करो, " ठाकुर मैं तुम्हारे प नहीं आ सकता, इसलिये प्रभु तुम मेरे पास आअ प्रभु तुम मुझे छोड़कर कहीं भी न जाओं "

(7) अगर तुम्हें मुझ पर विश्वास है तो जो चाहोगे व मिलेगा। अगर मुक्ति चाहोगे तो मुक्ति मिलेग मुझे चाहोगें तो मै स्वयं तुम्हारे पास आऊँगा के अपने अंदर के ईश्वर को जगाना होगा ।

श्री अक्षय कुमार सेन द्वारा लिखित श्री रामकृष्ण पुंथि के आधार पर स्वामी जितात्मानन्द (राजकोट रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष) के प्रवचन से प्रेरित :–

AN APPEAL

The Ramakrishna Mission Institute of Culture began its modest activities in 1938 and finally settled at the present site in 1961. It has grown over the years into an internationally reputed educational and cultural centre. For the last several years, the Institute has been severely handicapped due to lack of space. In the library, the stacks cannot accommodate the increasing number of books and periodicals. The reading room of the library has become too small for an average of 1500 people who use its facilities every day. There is also a severe shortage of space in the school of languages, research department, publication department, museum and art gallery, This acute shortage of space has prevented the Institute from offering its services efficiently and from meeting the growing public demand on its facilities.

To remedy this, the Institute embarked upon an expansion project a few years ago. The first phase of this project involved purchasing a plot of land, 40' kottahs in size, adjacent to the present building, for Rs. 1.76 crores. The second phase involved diverting a public road that ran between the present building and the recently purchased land, for which the Institute spent another Rs. 0.38 crores. The total cost of the next phase of this project, which involves constructing a building and furnishing the same, is estimated at Rs. 8.40 crores.

For years the Institute has been getting the valued patronage of the intelligentsia and the devotees of the Ramakrishna Mission. We therefore appeal to all of you to stand by us and donate generously to this project.

Donations to this project are eligible for tax exemption under Section 80G of the Income Tax Act, 1961. The demand drafts and cheques drawn in favour of The Ramakrishna Mission Institute of Culture may be sent to the following address:

SWAMI PRABHANANDA

Secretary, The Ramakrishna Mission Institute of Culture

Gol Park, Kolkata - 700 029

Telephone: (91-33) 464-1303 (3 lines), 465-2531 (2 lines), 466-1235 (3 lines)

Fax : (91-33) 464-1307

E-mail : rmic@vsn1.com or, rmics1@glasc101. Vsn1.net.in

Website : www. sriramakrishna.org

...assic, Chapra.

डाक पंजीयित संख्या – सी.एच.पी. १४-८३

हमारा हिन्दी प्रकाशन

शिवानन्द स्मृतिसंग्रह

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के अंतरंग पार्षद
स्वामी शिवानन्दजी महाराज के संस्मरण

तीन खण्डों में

प्रत्येक खण्ड का मूल्य रु. ५०.००

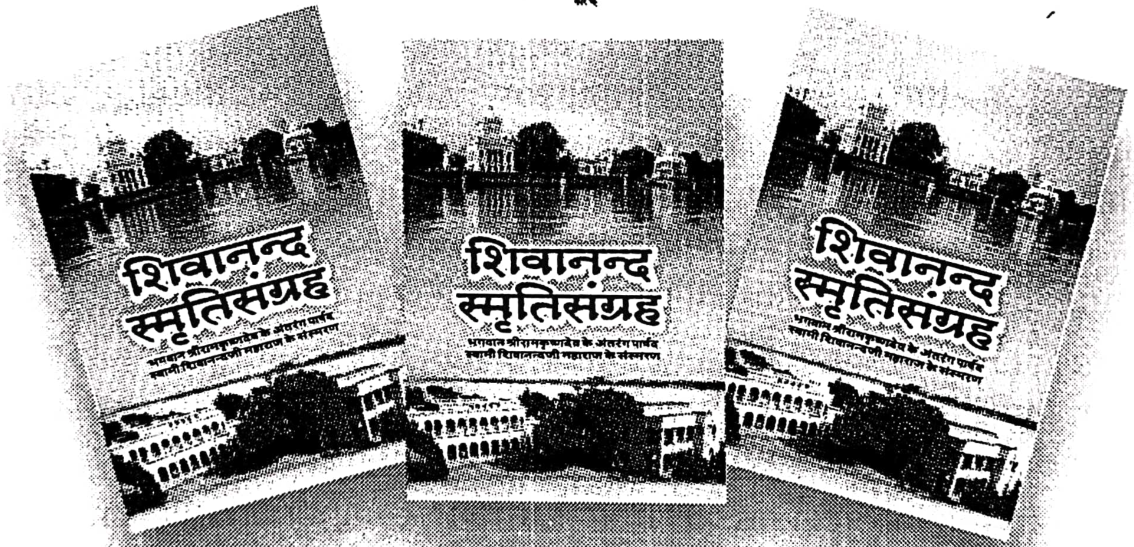

तत्त्वज्ञ महापुरुषों की वाणी और स्मृति त्रितापदग्ध मनुष्यों के जीवन-मार्ग की अमूल्य सम्पत्ति है। आत्मज्ञ पुरुषों के चरणों में बैठने का सौभाग्य अपरिमित पुण्यों के फलस्वरूप ही मिलता है। ऐसे ही महानुभावों ने इस ग्रन्थ के लिए अपने पवित्र स्मृति से विभिन्न प्रबन्ध लिखे हैं। यह ग्रन्थ संसार-ताप से तप्त मनुष्यमात्र के हृदय में शान्ति, आशा और उद्दीपन जागृत करनेवाला है।

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

डॉ. केदारनाथ लाभ, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा विवेकानन्द
ऑफसेट प्रिन्टर्स, छपरा – ८४१३०१ में मुद्रित।